Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जनपक्षधर संस्कृति का सृजनात्मक मंच

सितम्बर 2002

अग्निशेखर और क्षमा कौल
द्वारा यह
पुस्तक सप्रेम भेंट

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इस अंक के रचनाकार-सम्पर्क

स्व० वामिक जौनपुरी	: द्वारा : आधारशिला, बड़ी मुखानी, हल्द्वानी, नैनीताल
मंगलेश डबराल	: 337 निर्माण अपार्टमेंट, मयूर विहार–1 दिल्ली–91.
वीरेन डंगवाल	: 189/193 सिविल लाईन्स, बरेली
पंकज सिंह	: ईस्ट एंड अपार्टमेंट, मयूर विहार, फेज–1, एक्स, दिल्ली–110096
राजेश जोशी	: 178 अराधनानगर, भोपाल
अमरकांत	: सी–862 गुरु तेगबहादुर नगर, बरेली, इलाहाबाद–16
स्वयंप्रकाश	: हिन्दुस्तान जिंक लि०, पुठठोली, चित्तौड़गढ़, राजस्थान
संजीव	: वरिष्ठ रसायनज्ञ, सेन्ट्रल ग्रोथ लि०, स्टील ऑथरिटी आ०ई० कुल्टी, वर्धमान
शंभुनाथ	: सम्पादक : सा० सृजन, 20 बालमुकुंद मक्कर रोड, कलकत्ता–7
कर्मेन्दु शिशिर	: न्यू पुनाईचक, शास्त्रीनगर, पटना–23
फिदेल कास्त्रो	: राष्ट्रपति, क्यूबा
कल्पना विश्वास	: द्वारा : सिनेमा एंड आई, ऋत्विक मेमोरियल ट्रस्ट, कोलकता
राहुल नीलमणि	: द्वारा : 'कृतिओर', सी–133 वैशालीनगर, जयपुर–1
श्री राम तिवारी	: सम्पादक – पटकथा, ई 1/99 अरेराकालोनी, भोपाल–6
अजय नांदे	: 204 सुषमा अपार्टमेंट, राजेन्द्र नगर, पटना, रोड नं०–10
रश्मिरेखा	: मिश्रा टौला, इमामगंज, मुजफ्फरपुर
अभय कुमार 'बेबाक'	: आरक्षी उपमहानिरीक्षक, पूर्णियाँ
डॉ० शान्ति सुमन	: मिठनपुरा, क्लब रोड, मुजफ्फरपुर–842002
वृजेश शर्मा	: द्वारा : 'सही समझ', ई–503, गोकुल रेजीडेंसी, दत्तानी पार्क, वेस्टर्न एक्सप्रेस हाइवे, कांदिवली (पूर्व), मुंबई–400101

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पुरुष

जनपक्षधर संस्कृति का सृजनात्मक मंच

29 वां संकलन : सितम्बर 2002

प्रबन्ध सम्पादक

रविन्द्र रविकर

अग्निशेखर और क्षमा कौल
द्वारा यह
पुस्तक सप्रेम भेंट

दृष्टि सलाहकार

डा० मैनेजर पाण्डे

परामर्श मंडल :-

त्रिपुरारिशरण, ध्रुवनारायण गुप्त, शिवशंकर मिश्र, मदन कश्यप एवं रविभूषण

सम्पादक

विजयकांत

निरालानगर, गोशालारोड, मुजफ्फरपुर –842 002 (बिहार)
दूरभाष : 0621-280052

संचालन, सम्पांदन एवं प्रकाशन पूर्णतः अव्यावसायिक, अवैतनिक
सहयोग राशि : एक प्रति 20/-, चार अंकों हेतु : 70/-, संस्था : 100/-, आजीवन : 1000/-
विदेश : 20 डालर

प्रकाशक : समीक्षा प्रकाशन, जे०के० मार्केट, छोटी कल्याणी, मुजफ्फरपुर।
मुद्रक : बी०के० ऑफसेट, शाहदरा, दिल्ली।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रचनाक्रम

सम्पादकीय ... 'गर्वयात्रा' की हमसफर यह 'निमित्तयात्रा' !

कविता

- **दस्तावेज** : मीना बाजार : स्व० वामिक जौनपुरी
- **रु-ब-रु** : छह कविताएँ : मंगलेश डबराल
  : सात कविताएँ : वीरेन डंगवाल
  : तीन कविताएँ : राजेश जोशी
  : पाँच कविताएँ : पंकज सिंह

गजल : सात गजलें एवं आठ रुबाईयाँ : अभय कुमार 'बेबाक'
: छह कविताएँ : शान्ति सुमन
: सात कविताएँ : अजय नांदे

सोच-विचार

- आधुनिक पुर्नजागरण की प्रस्तावना : डॉ० शंभुनाथ
- समाज का नैतिक संविधान 'नीतिदर्शन' : कर्मेन्दु शिशिर
- आतंकवाद और युद्धसंकट : फिदेल कास्त्रो (अ० राहुल नीलमणि)

कथा

- पोखरा : अमरकांत
- प्रौढ़ शिक्षा : स्वयंप्रकाश
- भूखे रीछ : संजीव
- उने-फेम-स्त-उने फेम : ज्यां लुक गोदार (कथा कमेंट्री)
- वर्गहीन कला एक ढ़ोग है : ऋत्विक घटक/ साक्षात्कार : डॉ० कल्पना विश्वास (अ० वृजेश शर्मा)
- समय में गढ़ते हुए :
  समय, लय और सम्पादन : आन्द्रेई तारकोवस्की (अ० श्रीराम तिवारी)

कृति-मूल्यांकन

- खाली जगह की आकाशगंगा : रश्मिरेखा

●●●

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अग्निशेखर और क्षमा कौल
द्वारा यह
पुस्तक सप्रेम भेंट

सम्पादकीय

'गर्वयात्रा' की हमसफर यह 'निमित्तयात्रा' !

प्रगतिकांक्षित प्राध्यापक लेखक–दल, इन कुछ वर्षों में दुर्गति के गर्वोन्नत कलाकार बने और बनते जा रहे हैं। चरमोत्कर्ष, चरम की ओर से ही प्रक्षेपित है।

बत्तीस वर्षों की अलेखनग्रस्तता के प्रति 'हाय' नहीं 'वाह' की थेथर तर्कसंगतता गढ़ी जा रही है। कितनी मुद्रित पुस्तकें हैं कबीर की ?–यह भोथरा तर्क वह–भीष्म आलोचक पेश कर रहा है–जो अपने अल्प मुद्रित शब्दों की औकात पर ही प्रकाशन-पत्रिका और सर्वोपरि विश्वविद्यालयों का नियामक तानाशाह बन सका। अदभुत है यह दृश्य। नरेन्द्र मोदी की गर्वयात्रा के संग सफर करती यह **निमित्त यात्रा**।

''**भूतो न**''–तो है ! लेकिन **भविष्यति**' के लिए आत्मश्लाघा का हयाच्युत आधार कोख ! ... एक परंपरा तो अब जन्म लेगी ही ! किन्तु प्रतिद्वंदितापूर्ण परम्परा। एक लज्जा पूर्ण विस्तार।

राजस्थान और उत्तर प्रदेश के भी कुछ गाँवों में जारी इधर के वे अमानुख अजूबे कौंधे–जिनमें मृत्युपूर्व वृद्ध-वृद्धाओं ने श्राद्धकर्म, भोज्य सहित सम्पूर्ण करना इसलिए अनिवार्य मान लिया कि–उन्हें वारिसों पर यकीन नहीं।

जीते-जी नामवर के निमित्त जारी यह द्विवार्षिक श्राद्धकर्म, किन वारिसों पर अविश्वास का परिणाम है ?

समस्त विश्वविद्यालयों के हिन्दी विभाग पर उनके उपकार और संभावित उपकार के एवज में जारी यह श्राद्ध-गर्व यात्रा एक सच्चे हिसाब-किताब बतौर क्यों नहीं स्थापित की जाती ? ताजुब्ब है कि जीवित नामवर के श्राद्ध उत्सव में वे भी शामिल हैं–जो उनकी दीघार्यु के आकांक्षी हैं ! वाचिक-परम्परा-जयंती-घूर्त्तता का कहीं कोई प्रतिकार हो भी क्यों ? जब आलोचक-दल इसी कर्म के अनुयायी-कमल हों ! शायद आलोचना अब हिन्दी-साहित्य का कोई रचना कर्म ही नहीं ! होती तो तीन दशकों से गप्पें छांटने और पंचसितारा भोगाश्रयी नामवर के श्राद्ध-गर्व-सफर की हमसफर न होती ! लज्जास्पद ही नहीं प्रतिरोधात्मक है यह दृश्य ! अदभुत जुगुप्सित है

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यह दृश्य ! डेढ या साढ़े तीन किताबों के बल अटल, हिन्दी आलोचना का यह अटल बिहारी वाजपेयी,–विस्मयकारी, राजग की वाचिक- संरचना–षडयंत्र में, ''अखंड निमित्त गर्वयात्रा'' कर रहा है। **और सारे पडाव हैं विश्वविद्यालयों के हिन्दी विभाग !**

दरअस्ल यह सारा छलावा सृजनात्मक आत्म विश्वास के क्षय का सूबूत है। नामवर की अलेखनता और उनकी वाचालता के साथी-संगी वही हैं–जो सृजनात्मक आत्मविश्वास के क्षरण से लबरेज है। यह मनुष्य, जो दशकों से एक अनिवार्य पाठक तक नहीं,–उसे सत्ता-तेजवश ढ़ोये जानेवालों की शिनाख्त होनी चाहिए।

यकीं जानें ! नामवर सिंह विगत तीन दशकों के हिन्दी साहित्य से न सिर्फ अपरिचित हैं, बल्कि इस अपरिचय के बल गर्वोन्नत हैं। पिछले वर्ष अन्वेषक-पाठक-आलोचक आदरणीय डा० खगेन्द्र ठाकुर ने मेरे प्रश्न का प्रतिकार करते कहा कि–उन्होंने असगर वजाहत और केदारनाथ सिंह को अभी-अभी पढ़ा है।–नामवर जी के प्रति खगेन्द्र जी के स्नेह-सम्मान पर ईंच भर शक किये बगैर नामवर जी की पाठकीयता का समकाल तो उजागर हो ही जाता है। ....

अंतराल ....

अगले पन्नों पर बाबरी एवं बम्बई विध्वंस काल का लिखा सम्पादकीय, पुर्नप्रकाशित करने के पीछे ऐसा कोई गुमानं नहीं कि–हमने तो तब ही एलान कर डाला था।

यह उस शर्मनाक पतनशीलता से पुर्नमुठभेड़ है–जो न तब आत्मसजगता के लिए राजी हुई और न अब आत्ममंथक संघर्ष के लिए राजी है। जी हाँ, यहाँ मात्र रचनाकारो की आत्महंता पतनशीलता का ही जिक्र है। बिकने-बेचने-पुरस्कृत-सम्पन्न होने की अंधता में मुल्क-मनुष्यता के कातिल रचनाकारों की। ... समस्त उत्तर आधुनिक विचारहीन बाजारवर्चस्वता की हिस्सेदारी के आकांक्षित ये रचनाकार दल, प्रतिकार-विचार नहीं, प्रचार-विलाप ही कर रहे हैं।

क्यों नहीं नरेन्द्र मोदी की गर्दन पकडी जा सकती ? क्योंकर विनय कटियार और अशोक सिंघलों की जुबानें नहीं कतरी जा सकतीं ? क्यों आडवाणी और बुखारी पर लगामें नहीं कसी जा सकतीं ? जबकि मुल्क की बहुसंख्यक जनता इन आकांक्षाओं के साथ है :

जाहिर है–आप अपनी जनता के साथ नहीं। अपने मुल्क और मनुष्यता के साथ नहीं। अन्यथा आप विश्लेषक-विलापी नहीं, प्रतिरोधक कलम के सिपाही दीखते।

प्रतिरोध के सृजनात्मक मंच की अनिवार्यता महसूस कर ही सन् 92 में रा०ल० पत्रिका समन्वय समिति का गठन हुआ था। इस सम्पादकीय में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उसके अन्तर्विरोधों की वे जड़ें दीखेंगी–जिसे अभी-अभी रा०अ०भा० लघु पत्रिका समन्वय समिति द्वारा जारी पर्चे में आखिरकार महसूस किया गया है। कोई पत्रिका अन्य पत्रिकाओं से सहकार बगैर समन्वय समिति,– संगठन तो दूर, समन्वित आंदोलन की परिणतियाँ भी नहीं पैदा कर सकतीं। फिलहाल तो सहकार का यह आलम है कि–संयोजक मंडल के सदस्य द्वारा सम्पादित पत्रिका **'वर्त्तमान साहित्य' न तो विनिमय स्वरूप, न लेखकीय मानदेयता स्वरूप और न विक्रय हेतु-सुलभ कराई पत्रिकाओं के मूल्य सहयोग स्वरूप मिल पाती हैं- 'पुरुष' के विनिमय स्वरूप भी नहीं ! 'इन्द्रजाल'-कथा के मानदेयवश नहीं। 'पुरुष' की 25 प्रतियों के विक्रय फल स्वरूप भी नहीं।-तो 'वर्त्तमान साहित्य' किस अर्थ में 'लघुपत्रिका' है और उसके सम्पादक किस बूते समन्वय समिति के विधायक संयोजक हैं,-अनेकों के साथ मैं भी जानना चाहता हूँ।**–'कथाक्रम' जैसी पत्रिकाएं भी हैं जिसे 'वर्त्तमान साहित्य' की ही तरह अपने सम्पादक-स्वामी के पद और धन-बल के अलावा किसी अन्य दृष्टि-आंदोलन या संगठन की कत्तई कोई जरूरत नहीं।

हम रा०स० समिति का ताजा पर्चा, समन्वय समिति की प्रेरणानुसार जारी 'पुरुष' का 'मेनीफेस्टेशन' एवं **गतिरोध दूर करने की व्यग्रता से लिखा पत्र भी यहां संलग्न कर रहे हैं।** और यह सब बेशक इसलिए कि हमारी उम्मीदें खलखला रही है। प्रतिरोध जन-जन की प्राणवायु बन रहा है। आर्थिक साम्राज्यवाद के आजमाये औजार साम्प्रदायिक आतंकवाद ने नंगों-भूखों-उत्पीड़ितों को विराटतम बहुसंख्यता बख्श दी है।

हमें जातियों-उपजातियों में ध्रुवीकृत होती सत्ताराजनीति और धर्माधरित राजनीत्ति में विभेद करने की मूर्खता बंद करनी होगी।

हमें काशीराम और मायावती को दलित मानने की धूर्त्तता खत्म करनी होगी। हमें प्रत्येक स्त्री को वर्गविच्छिन्न दलिता मानने की साजिश खत्म करनी होगी।

हमें प्रेमचंद और निराला तक को सवर्ण कोख की संताने होने के कारण उन्हें दलितों का लेखक न मानने की दलित सवर्णता को सचेत ठोकरें मारनी होंगी।

रामविलास शर्मा के लेखन में साम्प्रदायिक-सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की पक्षधरता ढूँढ़ निकालनेवाले सत्ताभोगी आलोचक की **'वाचिक' वाचालता** की प्रदूषित जड़ें दिखार करनी होगी।

पुनः कहूँ कि–ये सारे जटिल प्रतिरोधात्मक सृजनात्मक कर्म, मात्र और मात्र जनपक्षधर लघुपत्रिकाओं के ही सिर हैं। लघुपत्रिकाएं, संकल्पपूर्वक संगठित हों, विचारपूर्वक सहकार घेरे में आंदोलित हों तो सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का अधिकानायकत्व खड-खंड-विखंड किया जा सकता है। बेशक और बेशक!

–विजयकांत

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

92-93 के रक्तरंजित काल पर अकाल होते मर्म की पुर्नप्रस्तुति
(गुजरात को गुजरी रात बना दिये जाने के संदर्भ में)
जून 93 के सम्पादकीय का अंश

कोई राह नहीं

रक्तरंजित वीभत्स चेहरे में तब्दील होता जा रहा है मुल्क का चेहरा। मजबही उन्मत्ता ने सारे जनतांत्रिक खोल उतार फेंके हैं और मुल्क की छाती उनके आतंकवादी खुरों की बेखौफ रौंद में है।

हमसब की छाती पर छीटें हैं। सारे मर्म, मर्माहत हैं। लेकिन मर्महीनता के विरूद्ध मर्माहतता क्या एक शस्त्र है ?–होता तो पचास सालों में सैकड़ों दफे मर्माहत हुए इस देश में मजहबी दरिन्दों की ऐसी लहलहाती खेती न उगती। ...

दैत्यसंस्कृति का ऐसा बेखौफ पुनरूत्थान कहीं हमारी तटस्थ मर्माहतता की ही देन तो नहीं–जिसे ही हम धर्मनिरपेक्षता कहते, बजाते अब भी नहीं अघाते। ...

संस्कृतिविहीनता का मुकाबला संस्कृतिसम्पन्नता करती है। विचार शून्यता के विरूद्ध एकमात्र सक्षम शस्त्र विचार है।

और यह निरन्तर हतप्रभ, अवाक, एवं मर्माहत हो जाना, विचार नहीं विलाप है। शस्त्रहीन, विवश, विसर्जनवादी कायर विलाप ! ब्रह्मास्त्र सदृश्य वैज्ञानिक दर्शन परित्यागे मुरदों का श्मशान गौरव। ... पीठ ही पीठ दिखाते, महज अपना सीना निशाने के बाहर रखने वालों की ओर रपटते ऐसे निःशस्त्र आत्मरक्षार्थ भी असमर्थ हो जाने के लिए अभिशप्त हैं।

निरुपाय हैं हम ! मार्क्सवाद दर्शन के ठीक सीमांत पर और चौगिर्द मजहबी घड़ियालों के खुले, खूनी जबड़े सन्नद्ध हैं।

जो सच ही मर्माहत हैं, वे या तो रण में वापस आयें या हिजड़े आत्मघाती बनें।

कोई राह नहीं ! मानवीय संस्कृति के सर्वोत्तम, समुन्नत दर्शन मार्क्सवाद के सिवा इस जंगली, खूनी, अंधकार में कोई राह नहीं !–जाति, ध र्म और वर्ण के चंगुल में बन्धक वर्ग संघर्ष की मुक्तिबगैर इस देश की मुक्ति नहीं।

वे वामपथी दल, जिन्होंने वर्गसंघर्ष के वक्ष पर वर्णसंघर्ष के विषैले पौधे जमाये,–लजायें नहीं, पलकें ताने,–मजहबी उन्मत्तता के ये चरम भस्मासुर फल उसी की शाखों पर और ऐन उनके सिर पर टंगे हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उस श्रमाश्रित वैज्ञानिक चेतना से–जो जाति, वर्ण सम्प्रदाय का सामंती इन्द्रजाल भेदकर समाज की वर्गविभाजित हकीकतें एवं उसके रुपान्तरण के तरीके अन्वेषित कर सका,–अब भी मुंहछिपाव करें वे, तो मजहबी भस्मासुर का कपालस्पर्श निकट है। ...संसदीय जबड़े में रसोन्मत्त आई०एम० एवं एम०एल० के लिए तो त्वरित-तत्काल।

हे सर्जक साथियो, आपातस्थिति है यह। देश के अस्तित्व रक्षा का काल ! संघर्षविमुख रचनाशीलता को सर्वथा और संकल्पपूर्वक खारिज पराजित करें हम। यही हमारा एकमात्र मनुजरक्षक एवं देशभक्त सांस्कृतिक आचरण होगा। जीवितों की ओर से देश को जीवित रखने की मर्माहत लालसा का प्रमाण ! और विचलन को झटक तोड़ें ! पतन सोवियत सत्ता का हुआ है, सोवियत जनता और उसकी जनसंस्कृति का नहीं। ख्रुश्चेव-ब्रेजनेव के अधम वंशज गोर्वाचोव-येत्सलिन लांछित हुए हैं–गोर्की, टाल्सटाय, चेखव, आस्त्रोवस्की, शोलोखोव और सर्वोपरि ब्लादीमिर इलिच लेनिन नहीं। प्रमाण सुलग रहे है। सोवियत रुस को विखंडित करनेवाले गद्दार येत्सलिन को कब्र के लिए दो गज ज़मीन मयस्सर नहीं होगी। ...

यही हाल होगा इस देश के मजहबी आतंकवादियों का भी। हम संघर्षसन्मुख तो हों ! सद्भाव के वोटपीड़ित नारे और मंदिर-मस्जिद के ध्वंस-निर्माण,–उत्पीड़न, दलित अस्सी प्रतिशत जनता के जीवन-यथार्थ नहीं है। फांकेकशी के मारों को व्रत और रोजा के भाष्य रास नहीं आ सकते। यही हैं– इस देश के बहुसंख्यक,–सत्तादलित, पूंजीपति-सामंतदलित और ध र्मदलित अस्सी प्रतिशत शोषित हिन्दू-मुसलमान जनता। इन्हें जाति, वर्ण और धर्म में बांटें रखने, इन्हें कदापि वर्गएकता की ओर अग्रसर न होने देने वाले ही दरहकीकत अल्पसंख्यक और इसलिए बहुलांश जनता के वर्ग शत्रु हैं।

इसी दोपाटे में मौजूद है हमारी समस्त रचनावस्तु !–कथा, कविता, दर्शन और विचार के यथार्थवादी मूलाधार ! दृष्टि यहाँ रोपें तो अनिवार्य साक्ष्य के तर्क नहीं, दृश्य दीखेंगे। ... और कोई बचाव नहीं है। भरपूर देखिए। दम-खम के साथ व्यक्त होइए। या आँखें फोड़ लीजिए।....

जाहिर है, ऐसी जिम्मेवार रचनाशीलता का प्रोत्साहन और पुनर्स्थापन लघुपत्रिकायें ही कर सकती हैं। उनके कंधे, इस ऐतिहासिक दायित्व से बेअसर नहीं है। लेकिन एक साझा दृष्टिकोण और सहकार के बगैर समान लक्ष्य के प्रति तीव्रता मुमकिन नहीं। दरअसल हमारी पत्रिकायें, श्रमजीवी पत्रिकायें हैं और श्रमजीविता, सहकार एवं सांगठनिक गतिशीलता के बल ही अटल हो पाती है। एक मंच, एक संगठन की भूमिका है हमारी पत्रिकाओं की। इसका आरभ ही इसी जनोन्मुख सांस्कृतिक भूमिका निर्वाह के लिए हुआ था।

एक प्रदेश से ही नहीं, छोटे शहर से भी कई पत्रिकाओं के अनियोजित प्रकाशन, गैर संठनात्मक हरकतें हैं और निश्चय ही इसकी नींव

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

साझा लक्ष्य के दायरे में नहीं है।

—यह आलोचना नहीं, निवेदन है कि वे दायरे में आयें। विभाजित एवं विच्छिन्न क्षमतायें दीघार्यु तो नहीं ही होती, अराजंक और निरर्थ भी हो जाती हैं। यह वक्त श्रृंखलाबद्ध समूह होने का है, विश्रृंखल व्यक्ति होने का नहीं। **लघु पत्रिकायें व्यक्तिनायकत्व नहीं, सामूहिक नायकत्व है।** तथाकथित व्यावसायिक साहित्यिक पत्रिका भी शेष नहीं अब ! अकाल पीड़ित हैं पाठक और यौनकुत्सा के रेत उड रहे हैं। ... अपसंस्कृति की फांस में अंधे, बनैले बनाये जा रहे व्यापक पाठक वर्ग को श्रेष्ठतम सृजन सुलभ कराये जाने के लिए मित्रों आइए, हम लामबंद हों ...।

अंतराल ...

जनोन्मुखी श्रमजीवी लघुपत्रिका परिवार से निवेदन

- सामान्य अंकों का प्रकाशनसमय, यथासंभव नियोजित करें।
- विशेषांकों की योजना पारस्परिक विमर्श द्वारा तय करें और सब उसे प्रचारित करें।
- दृष्टिसम्पन्न एवं कलाक्षमतापूर्ण श्रेष्ठ रचना मुहैया करान में परस्पर सहयोग करें।
- समीक्षा कोष तैयार करायें। मित्र पत्रिकाओं एवं उसमें शामिल रचनाओं का मूल्यांकन क्रम जारी करें।
- प्रचार-प्रसार एव विक्रय दायित्व में सहकार करें।
- अपने शहर-कस्बों में 'पत्रिका मण्डप' बतौर, पुराने पुस्तक-पत्रिका विक्रेता को चुनें या नये केन्द्र की स्थापना का प्रयास करें। पत्रिका मेला लगवायें।
- मुफ्तखोरी पर अंकुश लगायें। सम्पादकों एवं पत्रिका में शामिल लेखकों के अलावा किसी को निशुल्क प्रति नहीं उपलब्ध कराई जाय।
- नये अंकों की रिलीज पर गोष्ठियाँ करायें। स्थानीय लेखकों, रंगकर्मियों, युवाओं एवं क्षेत्रीय अखबारों की इन गोष्ठियों में भागीदारी करायें।
- चेष्टा करें कि-एक छोटे शहर के सचेतन सृजन-कर्मियों की साझा ताकत एक ही पत्रिका के साथ एकजुट हो।
- संघर्षविमुखता एवं मनोगतता को स्थापित करती रचनाशीलता को निरुत्साहित करें।
- सम्प्रदायवाद, जातिवाद, वर्णवाद, पृथकतावाद एवं अमेरिकी प्रभुत्ववाद का विपक्ष ही हमारा पक्ष है। रचना और विचार इसकी प्रबल पक्षधरता करें। **(लघु पत्रिकाओं की राष्ट्रीय समन्वय समिति के प्रेरणानुसार, 'पुरुष' मार्च ९३ में जारी)**

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

राष्ट्रीय लघु पत्रिका समन्वय समिति जयपुर में आयोजित चौथे राष्ट्रीय सम्मेलन के बाद चुप्पी और निष्क्रियता कैसे टूटे ?

प्रिय साथी,

जयपुर में 24-25 फरवरी 2001 को आयोजित चौथी राष्ट्रीय सम्मेलन अपनी कुछ कमियों के बावजूद काफी सफल था। इसमें सघन विचार-विमर्श हुआ था, साथ ही सम्मेलन उत्साह से भरा था। थोड़ी देर से पर वहीं से बहुत अच्छी सामग्री के साथ बुलेटिन 5 भी छपा। सम्मेलन में कई चीजों के साथ यह तय किया गया था कि 2001 के ही अक्टूबर महीने में राष्ट्रीय कार्यकारिणी की बैठक लखनऊ में हो। इसकी मेजबानी का दायित्व कात्यायनी को सौंपा गया था। उन्होंने तत्परता से दो बार प्रयास किया कि कार्यकारिणी की बैठक हो, इसके साथ जयपुर सम्मेलन के मुद्दों को आगे बढ़ाया जाए। पर हम सभी के प्रयास में कहीं न कहीं कोई गहरी कमी है और माहौल भी कुछ ऐसा ठस है कि राष्ट्रीय लघु पत्रिका समन्वय समिति के सदस्यों की तरफ से अपेक्षित प्रत्युत्तर नहीं मिला और कार्यक्रम दो बार रद्द करना पड़ा। इस बीच अमेरिका की आर्थिक-सैनिक दादागिरी, इजराइल द्वारा फिलिस्तीनियों का दमन, गुजरात नरसंहार, देश में बढ़ते कट्टरवाद के अलावा बढ़ती बेरोजगारी और हमारी सामाजिक भिन्नतावाद को उकसाते हुए धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्रीयता का तरह-तरह से राजनैतिक दुरुपयोग, समाज में बढ़ता जा रहा बाजारवाद, उपभोक्तावाद और नया बौद्धिक उपनिवेशवाद, अभिव्यक्ति की स्वाधीनता पर नए हमले और डाक खर्च में असीमित वृद्धि—इन सारे मामलों ने इधर तेजी से आदमी के जीवन का संकट बढ़ाया है और एक रचना-विरोधी माहौल भी तैयार किया है।

फिर भी यह लक्षित किया जा सकता है कि बिना ठोस पूंजी के भी इधर पहले से बड़ी संख्या में लघु पत्रिकाएं नियमित निकल रही हैं। जो अनियमित हैं वे भी उच्चस्तरीय सामग्री दे रही है। ये साहित्यिक पत्रिकाएं उनके दिलों में भी जगह बना रही हैं, जिनका सीधा सरोकार साहित्य से नहीं है। साहित्य और समाज के संबंध को मजबूत करने में लघु पत्रिकाओं ने इधर जो ऐतिहासिक भूमिका निभाई है, वह भारतेन्दु और प्रेमचंद के जमाने की याद दिला रही है।

यह जरूर चिंताजनक है कि अपनी-अपनी लघु पत्रिकाओं के प्रकाशन के मामले में लेखक-संपादक जितनी निष्ठा और कुशलता से लगे हैं आपसी समन्वयन में, सामूहिक प्रयत्न से साहित्यिक पत्रिकाओं के लिए व्यापक सामाजिक वातावरण बनाने में एवं विश्व, भारतीय समाज, भाषा और संस्कृति के समक्ष उपस्थित चुनौतियों का अपने माध्यम की सीमा में एकजुट होकर सामना करने के मामले में अभी सामाजिक रूप से उतने सक्रिय नहीं हो पा रहे हैं। लघु पत्रिका महज एक साहित्यिक प्रकाशन भर नहीं है, यह

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एक आंदोलन का मामला है। यह सही है कि यह आंदोलन अभी आकार नहीं ले पा रहा है। पर इसका यह जवाब नहीं है कि जब समाज में पहले जैसा कोई व्यापक जनांदोलन नहीं है तो लघु पत्रिकाएं क्या करें। फिर भी यह स्पष्ट है कि वर्तमान दौर में सभी लेखक-संपादक अपने समय के प्रति न केवल खूब सचेत हैं, बल्कि गहरी चिंता से भरे हुए हैं और रचनात्मक परिदृश्य में फिलहाल किसी बड़े वैचारिक मतभेद की गुंजाइश नहीं है और आपसी द्वेष भी पहले से काफी घटा है।

उपर्युक्त संदर्भों में हम लघु पत्रिकाओं के सभी लेखकों-संपादकों से अपील करते हैं कि वे इसके कुछ उपाय सुझाएं कि हम अपने भीतर के संकट और ढीलेपन से कैसे निकल सकते हैं, ऐसा क्या किया जाय कि राष्ट्रीय लघु पत्रिका समन्वय समिति के सदस्यों के बीच संवाद और समन्वय में तेजी आए, राष्ट्रीय सम्मेलन में तय किए गए कार्यक्रम हर नगर मे रूपायित हों, रालपसस के भाव कार्यक्रम क्या हों, यदि आपसी समझदारी में कोई दरार हो तो केसे दूर की जाए, राज्य स्तर पर जिन्हें जिम्मेदारियां दी गई हैं वे इन्हें कैसे पूरी करें, वहां रालपसस की तरफ से समय-समय पर लघु पत्रिका प्रदर्शनी-परिचर्चा के कार्यक्रम स्थानीय लघु पत्रिकाओं के संयोजकत्व में कैसे आयोजित हों, कार्यशालाएं कैसे हों, नौजवानों के बीच लघु पत्रिकाओं को कैसे लोकप्रिय बनाया जाए--आपसे अनुरोध है कि इन सभी प्रश्नों पर कृपया महीने भर में अपने विचार **389, जी०टी० रोड, हावड़ा-711106** के पते पर भेजें। हम सभी के ये विचार एकत्रित रूप में सभी केन्द्रीय संयोजकों, केंद्रीय कार्यकारिणी तथा राज्य कार्यकारिणी के सदस्यों एवं लघु पत्रिकाओं के अन्य लेखकों-संपादकों के पास भेजे जाएंगे ताकि सभी एक दूसरे के विचारों से अवगत हों और अन्ततः वर्तमान जड़ता को तोड़ने का मार्ग निकले।

हम आपका इस मामले में भी सुझाव पाना चाहते हैं कि क्या केंद्रीय कार्यकारिणी की बैठक और पांचवा राष्ट्रीय सम्मेलन लखनऊ में आगामी फरवरी या मार्च 2003 में आयोजित हो–इसका आयोजन कब किया जाय तथा इसमें केंद्रीय मुद्दा क्या हो ?

इसके अलावा हम यह भी अपील करते हैं कि **आगामी 9 सितम्बर 2002 को भारतेन्दु हरिश्चंद्र के जन्म दिवस को हर नगर में लघु पत्रिका दिवस के रूप में मनाया जाए।** ऐसा एक फैसला जयपुर सम्मेलन में हुआ था। हर नगर में लघु पत्रिकाएं संयुक्त रूप से अत्यत छोटे या बड़े किसी भी स्तर पर परिचर्चा-सह-प्रदर्शनी का आयोजन करें। इस आयोजन की रपट बुलेटिन में प्रकाशनार्थ भेजें। आशा है आप चुप्पी तोडेंगे और अपने विचार और सुझाव भेजकर राष्ट्रीय लघु पत्रिका समन्वय समिति के अभियान को मजबूत बनाने की दिशा में जरूरी कदम उठायेंगे। अभिवादन सहित,

ज्ञानरंजन/शंभुनाथ/विभूतिनारायण राय/रामकुमार कृषक/शंकर/ हेतु भारद्वाज।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अंतराल ... (आजमगढ़ सम्मेलन के बाद 'पुरुष' द्वारा जारी पत्र)

प्रति : समस्त लघु पत्रिका परिवार के सम्पादक एवं लेखक गण

विषय : जून 92 कलकत्ता सम्मेलन के बाद सर्वथा गैरसहकारपूर्ण एवं गैरआन्दोलनपरक संगठन स्थिति।

प्रिय आदरणीय साथियों,

विषय, स्वतः आपके गंभीर ध्यानाकर्षण का प्रसंग है।

एक दशक बाद भी हम समन्वय समिति को संगठन में रूपांतरित नहीं कर पाये है। आजमगढ़ (98) में हमनें पुरजोर कोशिश की, लेकिन हम निष्फल रहे।

सं० संयोजक के संग विराट संयुक्त संयोजक मंडली के अलावा हमें कुछ हासिल न हुआ। आज तो और ज्यादा अपसंस्कृति के हमले बेखौफ हुए हैं। हमारी भूमिका स्वतंत्र, स्वायत्त (और देर सबेर) पत्रिका छाप देने भर की रह गई है।

एक संगठन, जो पत्रिकाओं को दृष्टि, लक्ष्य, विचार के सहकार से अभिन्न रखे,–हमारी फौरी जरूरत है।

राष्ट्रीय कार्यकारिणी के प्रस्ताव अनुसार 'रंग अभियान (बेगूसराय), 'अभिधा' (मुजफ्फरपुर) एवं 'पुरुष' (मुजफ्फरपुर) द्वारा आतिथ्य प्रबंध हो चुका है।

आप अपना मंतव्य और निर्णय अविलम्ब सूचित करें।

... और यह गलीज आत्मसमर्पणवादी आचारण

हमने राष्ट्रीय दैनिक 'हिन्दुस्तान' के पन्नों पर एवं पुनः 'पुरुष' (अप्रील 02) के सम्पादकीय पन्ने पर बिहार राजभाषा समिति द्वारा जारी साहित्य सम्मान-सूचि पर जो विचारशील तर्क उपस्थित किये थे उन्हें दुबारा देना अब इसलिए अनिवार्य हो गया है कि सरकारी बख्शीश पानेवालों की भीड़ में, निचले दर्जे पर ही सही श्री राजेन्द्र प्रसाद सिंह, मधुकर सिंह एवं शांति सुमन भी हैं। इन तीनों ने इस भ्रष्ट-अराजक-शोषक सत्ता के आगे अपना सिर नवाना और हथेली भर लेना कूबूल कर लिया है।

वह अंश उद्धृत करूँ–जो तब 'हिन्दुस्तान' और 'पुरुष' सम्पादकीय का हिस्सा बना था–"बिहार राजभाषा समिति से हासिल शिखर सम्मान, श्री राजेन्द्र यादव क्या इसलिए वापिस कर देंगे कि–यही शिखर इस वर्ष एक ऐसे व्यक्ति को दिया गया है–जिसका एकमात्र साहित्य–परिचय राजा राधिकारमण सिंह की औलाद होना है ? और दूसरे का एक भ्रष्ट प्रतिकुलपति प्रमाणित होने के बावजूद, पटना विश्वविद्यालय में पुन: प्राध्यापक हो जाना है ? मंत्रियों, सचिवों, मृत कुलपतियों, विभागाध्यक्षों के खानदान को पुरस्कृत करने की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दूसरी कई राहों के बावजूद राजभाषा सम्मान ही अब सबसे सुगमतम राह बन गई है। बिहार में, बिहार सरकार और उसके सम्पूर्ण शिक्षा-संस्कृति विभाग द्वारा--साहित्य-संस्कृति कर्म की जरूरत पर थूक दिया गया है। प्रायः पचास रचनाकार होंगे (बिहार के) जिन्हें देश का प्रत्येक गंभीर पाठक और आलोचक न सिर्फ जानता है बल्कि उनके मूल्यांकन में सक्षम हैं। क्या इस सम्मान चुनाव में ऐसे पाठकों-आलोचकों-मूल्यांकनकर्त्ताओं की कोई हिस्सेदारी है ? बिहार राजभाषा समिति का यह सम्मान जिन किसी ऐसे साहित्यकार के सिर बरपा हो, जो साहित्य के असम्मान का घात झेल रहे हों,--उन्हें इसे फौरन अस्वीकार कर देना चाहिए''।

हैरतअंगेज है कि—इस सूची में शामिल सर्वश्री राजेन्द्र प्रसाद सिंह, मधुकर सिंह एवं शांति सुमन पर भी इस विचारशील अपील का कोई असर नहीं ! ये सब सरकारी बख्शीश पाने के आवेग से लथ-पथ हैं ! इन्हें यह फिक्र तक नहीं कि सर्वथा दृष्टिहीन सत्ताचाटुकार निर्णायक मंडल की हिन्दी साहित्य में औसत हैसियत नहीं ! इन्हें यह परवाह भी नहीं कि इनके नाम अन्य चाटुकार जीवों को तर्कसंगतता प्रदान करते हैं।

अद्भुत हतप्रभतामय शोकपूर्ण है यह दृश्य ! एक जातिपोषक बर्बर लुटेरी सत्ता के समक्ष नतशिर खुली हथेलियों में कुछ हजार नोट हासिल करते गदगद और लदबद हो जाना ! हम विचारपूर्वक एवं दृढतापूर्वक इस गलीज समर्पणवादी आचरण का प्रतिवाद करते हैं।

....

अपने प्रांत की जो सामाजिक-आर्थिक स्थिति है, उसमें यह पुरस्कार अनुकूल नहीं लग रहा है। औपचारिकता के तहत इसको ग्रहण करना इस बात का प्रतीक नहीं है कि मेरी कवितायें पुरस्कार के लिये खड़ी हैं। वस्तुतः पुरस्कार किसी कवि या कविता की सामाजिक स्वीकृति या लोकप्रियता का निकष नहीं है और न ही इससे किसी रचनाकार के व्यक्तित्व का गौरव बढ़ता है। इस पुरस्कार को पाकर धन्य होने जैसा कोई भाव मुझमें नहीं है। मैं इस अंतर्विरोधपूर्ण पुरस्कार-प्रणाली के प्रतिवाद में साथी लेखकों के साथ हूँ और इसकी अस्वीकृति के प्रबल पक्ष में हूँ।

—शांति सुमन

(हमें हार्दिक खुशी है कि--सुश्री शांति सुमन राजभाषा विभाग, बिहार सरकार की साहित्यविरोधी पुरस्कार नीति के प्रतिवाद में दृढतापूर्वक हमारे साथ खड़ी हैं।--)

पुरुष
निराला नगर, गोशाला रोड
मुजफ्फरपुर—842 002 (बिहार)
दूरभाष : 0621-280052

स्नेह सहित सादर
साथी विजयकांत
सदस्य, रा० लघु पत्रिका स० समिति
भारत

●●●

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कविता

दस्तावेज

मीना बाजार
वामिक जौनपुरी

गिनारों पर अजाँ हुई
ये शाम भी कहाँ हुई
पुजारी मंदिरों में आ के शंख फूंकने लगे
ये शाम भी कहाँ हुई
गजर बजा–बटन दबे
वो कुमकुमे चमक उठे
दुकानें जगजगा गई
निगाहों में समा गई
वो महवे शान सीमबर
फसूँ तराजे रहगुजार
दरों में अपने आ गई

और अपनी कायनाते गम पे खुद ही जैसे छा गई
लबे खगोश में नई कहानियाँ लिये हुये
रूखों पे गाजों से लदी जवानियाँ लिये हुये
तपे हुए दिमागो दिल में कितने शोले गुश्तइल
ये वो खिजाँ रसीदा हैं बहार जिनसे गुनफंइल

जमाने के सलूक से
ये तंग आ के भूक से
रगड़ रही हैं एड़ियाँ
मज़ल्लतों के गार में
और इन्तकाम के लिये

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

खड़ी हैं इन्तजार में
समाज की ये बेटियाँ
समाज ही की बीवियाँ
नजर के तेज भालों से
शराब के पियालों से
फरिश्तों के शरीफ़तर
जमीं के रहने वालों से
ख़िराजे हुस्न पायेंगी
हसेंगी और हसायेंगी
ये वो हैं जिनकी जिन्दगी
मसरर्रतों से दूर है
ये वो हैं जिनकी हर हंसी
जराहतों से चूर है

ये वो हैं जिनका घर बुलंदियों पे रह के पस्त है
ये वो हैं जिनकी फ़त्ह भी शिकरत ही शिकस्त है
मगर इन्हीं पे संगसारियों का हुक्म आ़म है
वजूद में ये कब से और किस तरह से आ गयीं
जवाब इसका फिर मिलेगा ये तो वक़्त शाम है
थके हुए निज़ाम की ये शाम भी कहाँ हुई

चलो अब आगे बढ़ चलें
यहाँ ठहर के क्या करें
हमारे हमसफ़र न जाने किस तरफ़ चले गये
अकेला हमको छोड़ के
मगर दिले हज़ी ठहरे
वो सामने दोराहे पर
ये कैसा अज़्दहाम है
ये कैसा इन्तज़ाम है
ये बादपा सवारियो पे कैसा एहतमाम है
उरूसी धूम–धाम है
ये बेबसों की रूखसती

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उजाले में ये तीरगी
सदायेनय से किस की हर फुगाँ लिपट के रह गयी
ये शाम भी कहाँ हुयी
अभी–अभी जवान साल
एक जिन्दा लाश को
हरीर में लपेट कर
मसर्रतों के दोश पर
किसी तलाई कोहना साल मक़बरे को सौंपने
ये लोग ले के जायेंगे
और उसके बाद होगा क्या
ये लोग भूल जायेंगे
किसी ने ग़ैज में कहा
ये कौन बदशगून है
ज़वान इसकी खींच लो
ग़रीबे शह् हो कोई
तो शह् से निकाल दो
उधर निगाहे अहटमन
हवेलियों पे ख़न्दाजऩ
इधर सवा दे वक़्त पर
उमीदों बीम की किरण
थके हुए निज़ाम की ये शाम भी कहाँ हुई
चलो अब आगे बढ़ चलें
यहाँ ठहर के क्या करें
हमारे हमसफ़र न जाने किस तरफ़ चले गये
अकेला हमको छोड़कर
किधर से आ गया
ये तंगोतार रास्ता
मगर ये किसकी चाल है
कदम हमारे रुक गये
किसी निहान ख़ाने का लुटा हुआ शबाब है
कि हाथ में समाज की शिकस्ता इक रबाब है
मुगन्नियों को दो खबर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कि इसके तार तार में
दबे हुए शरार हैं
न जाने कौन राग है
न जाने कितनी आग है
मगर ये किसके वास्ते
सदाओं पर सदाएँ दें
यहाँ तो अब कोई नहीं
बस इक चराग़ झिलमिला रहा है वो भी बुझ गया
मिज़ह लरज़ के रह् गई
और इक निगाहे वापसीं
फ़साने कितने कह गई
चिता भी ख़ाक हो चुकी
जवानी खून रो चुकी
ये कौन शय दबे क़दम ठिठक के दूर हट गयी
दरिन्दे चढ़ते आ रहे हैं मरघटों की राह में
सियाही बढ़ती जा रही है फ़िक्र में निगाह में
ये मुख़्तसर सी दास्ताँ
और इसमें इतनी तल्ख़ियाँ
तुलू-ए-शब में अलअगाँ
ये आधी रात का समाँ
थके हुए निज़ाम की ये शाम भी कहाँ हुयी
चलो अब आगे बढ़ चलें

◆◆◆

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मंगलेश डबराल की कविताएं

रचना प्रक्रिया

बीच-बीच में उसने गला साफ किया पसीना पोंछा
और पानी पिया
अचानक उसने एक तानपूरे से टिका दी अपने संगीत की कंठ
फिर वह दूसरे तानपूरे की तरफ बढ़ा
जैसे सहारे के लिए लाठी खोजता हो कोई वृद्ध
तबले पर बजता था विलंबित एक ताल
उसकी उगलियां थामे हुए वह चलता रहा
हारमोनियम से उठते स्वरों को उसने इस तरह पकड़ा
जैसे कठिन चढ़ाई पर हम पकड़ते हैं घास झाड़ियां टहनियाँ

कई जगह वह छोड़ देता था लंबे अंतराल
सुस्ताने बैठ जाता था
तब सिर्फ हारमोनियम तबला और तानपूरे ही सुनाई देते
कभी-कभी उनमें प्रवेश कर जातीं बाहर की आवाजें
सहसा वह सारे अवलंबन छोड़कर गाने लगता अकेला
फिर किसी अज्ञात निर्जन से घबराकर
लौट आता इन्हीं सबके पास भरोसे के लिए
सबसे कम भरोसा था उसे अपनी आवाज पर
अपनी तमाम मेहनत अपने सारे अभ्यास पर।

◆

दृश्य

जिनसे मिलना संभव नहीं हुआ
उनकी भी एक याद बनी रहती है जीवन में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जिनसे मुलाकात होने में कुछ ही पल की देर हुई
और उन वजहों की भी जो मिलने के रस्ते में आयीं
जरा गौर से सुनें तो जिनसे कभी बात ही नहीं हुई
उनकी धीमी आवाजें भी सुन पड़ती हैं कानों में
वे कहते दिखतें हैं कुछ
इस तरह कि हम अनजाने ही उसमें शामिल हो लें
और कुछ दूर चलें पैदल
जैसे जाते हों उनसे मिलने
चलते–चलते दिख जाता है कोई और बगल में चलता
दुख और सुख की धूपछांह में
और अंधेरे में भी लगता है कोई हाथ प्रेम से भरा
हमारी ओर बढ़ रहा है आहिस्ता
आते दिखते हैं कई अजनबी राहगीर
पूछते हुए पता अदेखी जगहों का

कहीं आसपास है वह जगह जहां हम गये नहीं
उसकी खुशबू आती रहती है हम तक
गौर से देखें तो दिखती है नदियां चौड़ी नीली
और तटों पर उनके झुके बादल
जिनके चेहरे पानी पर बहते जाते हैं
और सिहरन से भरे हुए वे अनजाने पुल
जिन पर तेज हवाओं की आवाजाही है
जिन्हें पार नहीं किया हमने जो छूट गये हमसे

उनकी रोशनियां जैसे स्वप्नों में जलती रहती हैं
एक अकेलापन है जिसकी याद किसी और
अकेलेपन में आती है
वह दृश्य बचा रहता है जो चारों तरफ
अदृश्य हुआ जाता है।

◆

गुमशुदा

शहर के पेशाबघरों और अन्य लोकप्रिय जगहों में
उन गुमशुदा लोगों की तलाश के पोस्टर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अब भी चिपके दिखते हैं जो कई बरस पहले दस–ग्यारह साल की
उम्र में
बिना बताए घरों से निकले थे
पोस्टरों के अनुसार उनका कद मंझोला है
रंग गोरा नहीं गेहुंआ या सांवला है
हवाई चप्पल पहने हैं
चेहरे पर किसी चोट का निशान है
और उनकी मांएं उनके बगैर रोती रहती हैं
पोस्टरों के अंत में यह भी आश्वासन रहता है
कि लापता की खबर देने वाले को दिया जाएगा
यथासंभव उचित इनाम

तब भी वे किसी की पहचान में नहीं आते
पोस्टरों में छपी धुंधली तस्वीरों से
उनका हुलिया नहीं मिलता
उनकी शुरूआती उदासी पर अब तकलीफें झेलने की ताब है
शहर के मौसम के हिसाब से बदलते गए हैं उनके चेहरे
कम खाते कम सोते कम बोलते
लगातार अपने पते बदलते
सरल और कठिन दिनों को एक जैसा बिताते
अब वे एक दूसरी ही दुनिया में हैं
कुछ कुतूहल के साथ
अपनी गुमशुदगी के पोस्टर देखते हुए
जिन्हें उनके परेशान माता-पिता जब-तब छपवाते रहते हैं
जिनमें अब भी दस या ग्यारह
लिखी होती है उनकी उम्र

◆

बार-बार कहता था मैं

जोरों से नहीं बल्कि
बार-बार कहता था मैं अपनी बात
उसकी पूरी दुर्बलता के साथ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

किसी उम्मीद में बतलाता था निराशाए
विश्वास व्यक्त करता था बगैर आत्मविश्वास
लिखता और काटता जाता था यह वाक्य
कि चीजें अपने सबसे बुरे दौर से गुजर रही हैं
बिखरे कागज संभालता था
धूल पोंछता था
उलटता-पलटता था कुछ क्रियाओं को
मसलन ऐसा हुआ होता रहा
होता तो क्या होता
होना चाहिए था हो सकता था
जिसके चलने में अब भी
एक रहस्य बचा था

सुनसान सड़क पर
अचानक कोई प्रकट हो सकता था
आ सकती थी किसी दोस्त की आवाज

◆

छपम छुपाई

बच्चे खेल रहे थे छुपम छुपाई का खेल
उन्हीं में से कभी किसी ने खोजा होगा इसे अनायास
इस तरह छिपने में भी पैदा हुई एक कला
एक परिचित जगह में उन्होंने खोज लिए कई अज्ञात दुर्गम कोने
रोजमर्रा की जरा-सी ओट में या मेज कुर्सी पलंग के नीचे
कभी किसी पर्दे को आड़ बनाते हुए
किसी पौधे के पीछे किताबों के अंबार की बगल में
कभी मां की साड़ी के छोर में छिपते हुए
छिपनेवाला कभी खोजनेवाली की पीठ को ही ओट बना लेता है
अक्सर वह आवाज भी देता है कि आ जाओ अब मैं
अच्छी तरह छिप गया हूं खोजे जाने के लिए तैयार
यह एक संकेत है कि जिसे तुम आसान समझते हो
यह दरअसल काफी कठिन है

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

और आवाज भी एक और जगह है जहां छिपा जा सकता है
अपने कुतूहल कल्पना और सहजबुद्धि के सहारे
आगे बढ़ता बच्चा खोज ही लेता है छिपे हुए को
कुछ देर की ऊहापोह के बाद
वही होता है एक सघन रोमांच का क्षण
जब रहस्य और यथार्थ चमकदार आंखों से एक दूसरे से टकराते हैं

अकसर मैंने देखा है यह छिपने और खोजने का खेल
और जब कोई सुराग पाने की कोशिश में कोई बच्चा
पूछता है कि आपने कहीं देखा मेरी दीदी को
मैं कहता हूं देखा नहीं
क्योंकि मैं छिपा रहता हूं किन्हीं और चीजों में
अपनी खाल के कवच में धूल होते कागजों में खामोशी में
बचता चला आया हूं यहां तक अपमान और अन्याय से
छिपा दूर-दूर तक कि यह भांपना कठिन हो कहां छिपा हूं
बहुत दिन हुए खोज नहीं पाया कुछ
गया नहीं किसी अनजान दुर्गम जगह की ओर
छुपम छुपाई खेलते बच्चों से कहता हूं दौड़ो नहीं
तुम्हें चोट लग सकती है जगह-जगह नुकीले कोने हैं
कहीं कीलें भी निकली हुई हैं
ध्यान रखो आराम से खेलो खोजने का खेल।

◆

घर की काया

कई सीढ़ियां चढ़कर धीरे-धीरे हमने इस घर में प्रवेश किया
यहां एक पुराना दरवाजा है
जिसे खोलने पर मनुष्य की-सी एक आवाज आती है
पर्दे लंबे समय से एक ही जगह
टंगे रहने की थकान में सोये हुए हैं
कुछ आगे बैठने के लिए कुछ कुर्सियां हैं
ताकि यहां लोगों को खड़े-खड़े जीवन न बिताना पड़े
एक आईने में चलते-चलते झलक जाता है

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हरेक का अकेलापन
मेज़ पर रखता होता है एक गिलास साफ पानी
नमक और खाने के लिए कुछ
इस घर की काया हमें रखती आयी है
बरसों से आत्मा की तरह
हम चुकाते आये किराया समय पर
सारे पैसे हमारे खर्च हुए इसी घर में
हमसे कहा गया घर का ख्याल रखें दीवारें साफ रहें
और हम इसमें अपना कुछ न जोड़ें
तब भी यहां हर वक्त कोई ठकठक होती रही
कमीज के बटन टूटे कभी चप्पलें कभी बच्चों के खिलौने
कुछ था शायद भड़का हुआ एक दरवाज़ा
या कोई बंद खिड़की जिसे ठीक करने की कोशिश चलती रही
बिस्तर और तकियों के नीचे निवास करते हैं
इस घर के हादसे रोग शोक जरा मरण

किराये के घर में इकट्ठा हुए कितने ही रहस्य
कोई मेहमान यहां भूल गया अपना तौलिया या रूमाल
कोई छोड़ गया कलम या चश्मा
किसी का ब्रश यहां अपने दातों से बहुत दूर पड़ा है
घिसी हुई पेंसिलें बिना ढक्कन की शीशियां
इस्तेमाल की जा चुकी चीज़ों के खोल दिख जाते हैं जब–तब
एक खिलौना गाड़ी से अलग हुआ पहिया
अचानक दिख जाता है चलता हुआ
एक गौरेया बुनने में लगी रहती है अपना नीड़

यहां हर कोई किसी को पुकारता रहता है
कोई हमेशा लौट आता है यह जानते हुए कि उसे चले जाना है
चंद्रमा और तारे रोज लौटते हैं इसकी छत पर
किराये के घर में हम आत्मा को साफ–सुथरा रखते हैं
झाड़ते पोंछते रहते हैं

◆◆◆

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वीरेन डंगवाल की कविताएं

जहाँ मैं हूँ

जहाँ नशा टूटता है ककड़ी की तरह
जहाँ रात अपना सबसे डरावना बैंड बजाती हैं
सबसे मद्धिम सुरों में
एक स्त्री जहाँ करती है प्रेम का सुदूर इशारा
जहाँ मछली का ताजा पंजर चबाता है ऊदबिलाव
जहाँ भष्टाचार का सौंदर्यशास्त्र रचते हैं
हमारे नीच शासक
जहाँ कोई युवा विधवा अकेले रोती चुपचाप
चौतरफा बोझ है संसार
जहाँ कौड़ा तापने अब भी अडिग साथी
मशगूल हैं किले को भेदने की
नयी तरकीब खोजने में

◆

दुर्बल मन

मन दुर्बल हुआ
और दुश्मन दौड़े
बदमस्त इच्छाओं के घोड़े
महारथी की अनुकम्पा भरी मुस्कान
और सोने के हाथों में चमड़ें के कोड़े
जाना ना, ना जाना उस ठौर
खीसें निपोरने के अलावा कुछ और नहीं
आ पायेगा
यों जाना।

◆

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रात-गाड़ी

मंगलेश को एक चिट्ठी

रात चूँ-चर्र-मर्र जाती है
ऐसी गाड़ी में भला नींद कहीं आती है ?

इस कदर तेज़ वक्त की रफ्तार
और ये सुस्त जिन्दगी का चलन
अब तो डब्बे भी पाँच ए सी के
पाच में ठुँसा हुआ बाकी वतन
आत्मग्रस्त छिछलापन ही जैसे रह आया जीवन मे शेष
प्यारे मंगलेश
अपने लोग फँसे रहे चीं-चीं-चीं टुट-पुट में जीवन की
भीषणतम मुश्किल में दीन और देश।
लोगों के दुख तनिक कम न हुए,– बढ़े और बढ़े और और
प्यास लगी होने पर एक ग्लास शीतल जल भी
प्यार सहित पाना आसान नहीं
बेगाने हुए स्वजन
कोमलता अगर कहीं दीख गयी आँखों में, चेहरे पर
पीछे लग जाते हैं कई–कई गिद्ध और स्यार
बिस्कुट खिलाकर लूट लेने वाले ठग और बटमार
माया ने धरे कोटि रूप
अपना ही मुल्क हुआ जाता पराया प्यारे मंगलेश।
रात विकट विकट रात विकट रात।
दिन शीराज़ा।
शाम रूलाई फूटने से ठीक पहले का लम्बा पल।
सुबह भूख की चौंध में खुलती नींद
दाँत सबसे विचित्र हड्डी
तैश में लगातार फ्लैट्ट की बालकनी से
झाकता छोटी नस्ल का व्यक्तित्वहीन कुत्ता
टेलीविजन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अख़बार भाषा की खुजाती हुई बड़ी आंत
विश्वविद्यालय बेरोजगारों के बीमार कारखाने
गुंडों के मेले राजधानियाँ
कलावा बांधे गद्‌गद खल विदूषक
सोने के मुकुट पहनते उतरवा रहे हैं फोटो
प्राथमिक शाला के प्रांगण में
नाच रहा है विभोर विश्वबैंक का कार्याधिकारी
बावदी बेबदी हत्यारें

◆

घिघ्घी

स्वप्न में मैं डरा
घिघ्घी बँधी
पुकारता था किसी को
मगर निकलती न थी आवाज़
कौन था आख़िर वह मेरा स्वजन
जिसे पुकारने को होता था सपने में?

घिघ्घी की गाँठ खोलने को
जब प्राण तक बन जाते थे
उँगलियाँ और नाखून
कौन खड़ा देखता था तब मुस्काता
क्रूरता के साथ
मगर दिखाई न देता ?
ग़ालिब किंवा प्रसाद जी की यह औलाद
कहाँ से बची रह गयी
कलेजे के इस बियाबान में ?

◆

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एन० जी० ओ० शब्द

इन्हीं शब्दों के साथ
शुरू की है उसने अपनी बात
इन्हीं से ख़त्म की
इन्हीं के साथ सम्पन्न किये
सारे ज़रूरी काम
इन्हीं से चलाये, जरूरी संघर्ष
इन्हीं से चला रहा है आजकल
एन जी ओ।

◆

चप्पल पर भात

किस्सा यों हुआ
कि खाते समय चप्पल पर भात के कुछ कण
गिर गये थे
जो जल्दबाज़ी में दिखे नहीं।
फिर तो काफ़ी देर
तलुओं पर उस चिपचिपाहट की ही भेंट
चढ़ रहीं
तमाम महान चिंतायें।

◆

नाक

हस्ती की इस पिपहरी को
यों ही बजाते रहिये मौला :
आवाज़
बनी रहे आखीर तक
इसी तरह साफ़–सुथरी–निष्कंप।

◆

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

राजेश जोशी की कविताएं

इत्यादि

कुछ लोगों के नामों का उल्लेख किया गया था जिनके ओहदे थे
बाकी सब इत्यादि थे.
इत्यादि तादात में हमेशा ही ज्यादा होते थे.
इत्यादि भाव ताव करके सब्जी खरीदते थे और खाना वाना खाकर
खास लोगों के भाषण सुनने जाते थे.
इत्यादि हर गोष्ठी में उपस्थिति बढ़ाते थे.
इत्यादि जुलूस में जाते थे तख्तियाँ उठाते थे नारे लगाते थे
इत्यादि लम्बी लाइनों में लग कर मतदान करते थे
उन्हें लगातार ऐसा भ्रम दिया गया था कि वे ही
इस लोकतंत्र में सरकार बनाते थे
इत्यादि हमेशा ही आंदोलनों में शामिल होते थे
इसलिए कभी कभी पुलिस की गोली से मार दिये जाते थे.

जब वे पुलिस की गोली से मार दिये जाते थे
तब उनके वो नाम भी हमें बतलाये जाते थे
जो स्कूल में भर्ती करवाते समय रखे गये थे
या जिससे उनमें से कुछ पगार पाते थे.
कुछ तो ऐसी दुर्घटना में भी इत्यादि ही रह जाते थे.

इत्यादि यूं तो हर जोखिम से डरते थे
लेकिन कभी कभी जब वो डरना छोड़ देते थे.
तो बाकी सब उनसे डरने लगते थे.

इत्यादि ही करने को वो सारे काम करते थे
जिनसे देश और दुनिया चलती थी.
हालांकि उन्हें ऐसा लगता था कि वो ये सारे काम

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सिर्फ अपना परिवार चलाने को करते हैं.
इत्यादि हर जगह शामिल थे पर उनके नाम कहीं भी
शामिल नहीं हो पाते थे.

इत्यादि बस कुछ सिरफिरे कवियों की कविता में
अक्सर दिख जाते थे.

◆

दो पंक्तियों के बीच

कविता की दो पंक्तियों के बीच मैं वह जगह हूँ
जो सूनी सूनी सी दिखती है हमेशा

यहीं कवि की अदृश्य परछाई घूमती रहती है अक्सर
मैं कवि के ब्रम्हांड की एक गुप्त आकाशगंगा हूँ
शब्द यहाँ आने से अक्सर आँख चुराते हैं
हड़बड़ी में छूट गयी कोई सहायक क्रिया या कोई शब्द
कभी कभार उठंगा सा आकर बैठ जाता है किसी किनारे पर
अनुस्वार और कुछ मात्राए झांकती रहती हैं मेरी परिधियों से
शब्दों से छन छन कर गिरती रहती हैं यहां कई ध्वनियाँ
कभी–कभी तो शब्दों के कुछ ऐसे अर्थ, भटकते हुए
चले आते हैं यहाँ
बिगाड़ैल बच्चों की तरह जो भाग गये थे बहुत पहले
अपना घर छोड़ कर

जैसी दिखती हूँ
उतनी अकंपित उतनी निर्विकार-सी जगह नहीं हूँ
एक चुप हूँ जो आ जाती है बातचीत के बीच अचानक
तैरते रहते हैं जिसमें बातों के छूटे हुए टुकड़े
कई चोर गलियाँ निकलती हैं मेरी गलियों से
जो ले जा सकती हैं
सबसे छिपा कर रखी कवि की एक अज्ञात दुनिया तक
बेहद के इस अरण्य में कुलॉचें मारती रहती हैं
कितनी ही अनजान-सी छवियाँ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शब्दों की ऊँची आड़ के बीच मैं एक खुला आसमान हूँ
कवि के मन्सूबों के उकाब जहाँ भरते हैं लम्बी उड़ान
अदृश्य की आड़ के पीछे छिपी हैं यहाँ कुछ ऐसी सुरंगें
जो अपने गुप्त रास्तों से
शब्दो की जन्म कथा तक ले जाती हैं
यहाँ आने से पहले अपने जूते बाहर उतार कर आना
कि तुम्हारे पैरों की कोई आवाज न हो
एक जरा–सी बाहरी आवाज नष्ट कर देगी
मेरे पूरे जादुई तिलिस्म को।

◆

सहायक क्रिया

हमारी भाषा की कुछ बनक ही ऐसी है
कि बिना सहायक क्रिया के उसका काम लगभग नहीं चलता.

हमारे व्याकरण में उसकी सात किस्में हैं सात दिनों जैसी
जो बिना कुछ जतलाये क्रिया के अधूरे काम को
पूरा करती रहती हैं चुपचाप.
वाक्य में वह अपने आप तलाश लेती है अपनी जगह
उसकी जगह में बहुत ज्यादा हेरफेर संभव नहीं
फिर भी कुछ आगे पीछे कर देने को वह अक्सर सह लेती है
कभी कभी पीछे से उठकर वह आगे आ जाती है
तो पूरे वाक्य को प्रश्नवाचक मुद्रा में बदल देती है.
क़ाल को चिन्हित करती सहायक क्रिया अक्सर
शब्दों की पंक्ति में इस तरह अन्त में आकर बैठती है
जैसे वह एक गरीब पाहुन हो
जो सिकुड़ कर बैठा हो पंगत की आखरी सीट पर

अक्षरों और मात्राओं के हिसाब से वह एक बहुत छोटी इकाई है
बहुत छोटी है उसकी आवाज.
लेकिन फिर भी सुनाई देती है वह सबसे ज्यादा
संगीत के लिये एक समय तक उसे बड़ी अड़चन माना जाता रहा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एक समय तो ऐसा भी था हमारी भाषा में
कि गीत और प्रगीत लिखने वाले बडे बडे दिग्गज
हकाल देना चाहते थे उसे भाषा से बाहर।
भाषा के कुशल करतबबाजों ने बहुतेरी कोशिश की
वाक्य से उसे बाहर रखने की
पर जीवन के व्यापक गद्य में उसकी उपस्थिति बनी रही लगातार
जब जब उसको बाहर रखने की कोशिश होती है
भाषा कुछ ड़री डरी–सी मरघिल्ली सी लगने लगती है
उसके आने से पूरे पद में एक अजब ठसक सी पैदा हो जाती है.

कभी कभी वक्ता के मन्तव्यों की व्यंजना भी छिपी रहती है उसमें
शासक अपने आदेशों में वृत्तिक सहायक क्रिया का
इस्तेमाल करते हैं अक्सर.
संशय की गुंजाइश कम हो जाती है वाक्य में उसके आ जाने से.

वह जितनी चुप चुप सी लगती है उतनी ही जिद्दी भी है
वह चाहे तो गडबड़ा सकती है पूरे वाक्य को
अकेले।।

◆◆◆

स्वानुभूत जटिल यथार्थ की सहज कविताओं का
बहुप्रशंसित काव्य संग्रह

बंधुए की होली

कवि : रविन्द्र रविकर

जो उनके अनुभव का अटूट साक्ष्य है।

उपलब्धता :
संवेदन प्रकाशन, रविकर लेन, गुजराल पथ, केसरी नगर, पटना-24

वितरक :
समीक्षा प्रकाशन, जे०के० मार्केट, छोटी कल्याणी, मुजफ्फरपुर-1

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पंकज सिंह की कविताएं

उनींदा प्रकाश

ज़रूरी मानी गयी है यहाँ–वहाँ प्रायोजित करुणा की झलक
ज़रूरी हैं मूर्तियाँ
पथराये इतिहास में टिके रहने को देर तक
ज़रूरी होता है कुछ साज़–सामान मनुष्यता का
संसद से दूरदर्शन तक
संस्कृति के कर्मकांड से निरन्तर सँवारा जाता हुआ

जगह है सबकी समाज में सबके हैं क़ाम
फ़र्माबरदार सतनरायन से लेकर अध्यक्ष तक के

जितनी ज़रा सी मिलती है जगह
उसी में देह सिकोड़ गाती बजाती हैं कलाएँ
पीड़ाओं की चितकबरी छवियों में
पंजरों से भरे परती–परातों हरेपन के बुलावों में

कर लेती हैं
साहस कर थोड़ा–थोड़ा विरोध भी

जीने के मामूली सिलसिले मिलाते रहते हैं
जिन पिटे चेहरों से बार–बार
जिनकी कहानी प्राणों को कँपाती है
उन्हीं सच्चे सहमे लोगों का उनींदा प्रकाश
दिखाता है राह दुर्गम अन्धकार में
धारासार बारिश के धुँधले उजालों की तरह

◆

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आतुर हवाओं सा दौड़ेगा प्रेम ही

प्रेम उतार देता है हज़ार परदे
अभिमान के परखचे उड़ाता
समय के कसैले छिलके उतार फेंकता
प्यास में रस भरी लालसाओं के समुद्र लिये
अँधेरे सायबानों तले मोमबत्ती सा
काले रंग को रह–रहकर हिलाता
ज्यों मछलियाँ हिलाती हैं घने जंगल में तालाब

प्रेम नियार लाता है मलिनताओं से आत्मा की
बचा–खुचा पारदर्शी जल
आशंकाओं से घिरे इन दिनों में
देता है जोखिम उठाने की ताक़त
मरते समाज के बीच

थरथराते अभागों के बीच जल उठता है
अलाव बनकर
प्रेम चिनगारियाँ उड़ाता ऊर्जस्व धिक्कार सा
सिखाता है देवत्व की भंगिमाएँ हैं सरासर मूर्खताएँ
मनुष्य बन भूलों को भी आने दें भाषा में
ज्यों हहराते पानी में चले आते हैं साँप, बिच्छू

प्रेम ही करेगा इस पृथ्वी को इतना निश्शंक
कि जा सके जीवन अपने पैरों भविष्य की ओर
ठंढ़े पत्थरों को ताप और शब्द देता
पंखुड़ियों और पत्तों में हरा संगीत रचता
उचाट आँखों में उत्सुकता की चमक लाता
आतुर हवाओं सा दौड़ेगा प्रेम ही.

◆

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मध्यरात्रि

मध्यरात्रि में आवाज़ आती है 'तुम जीवित हो?
मध्यरात्रि में बजता है पीपल
ज़ोर-ज़ोर से धिराता-डराता हुआ

पतझड़ के करोड़ों पत्ते
मध्यरात्रि में उड़ते चले आते हैं नींद की पारदर्शी दीवारों के आर-पार
पतझड़ के करोड़ों पत्ते घुस आते हैं मेरी नींद में

मध्यरात्रि में घूमते होंगे कितने नारायन कवि धान के खेतों में
कितने साधूजी
सिवान पर खड़ी इन्तज़ार करती है शीला चटर्जी मध्यरात्रि में

मध्यरात्रि में मेरी नींद खून से भीगी धोती सरीखी
हो जाती है मध्यरात्रि में मैं महसूस करता हूँ ढेर सारा ठंडा खून

'तुम जीवित हो ?' आती है बार-बार आवाज़

मध्यरात्रि में दरवाज़ा खटखटाया जा सकता है
बजायी जा सकती है किसी की नींद पर साँकत

मध्यरात्रि में कभी कोई माचिस पूछता आ सकता है
या आने के पहले ही मारा जा सकता है मुठभेड़ में
मेरे या तुम्हारे घर के आगे

◆

मुमकिन है अभी

पृथ्वी पुकारती है सुबह को
और सूर्यादय होता है
पृथ्वी पर रात झुकती है साँझ का रेशम लिये
फूटते हैं धागे आकाश की ओर
और चन्द्रोदय होता है

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

थका मज़दूर सोता है बेढंगेपन से
जहाँ पाये तहाँ
रोती है देर तक मार खायी औरत

लिखता है कोई वर्णमाला का पहला अक्षर

कुछ किसान एक सभा में जाते हैं

एक शिक्षा है जो निरन्तर चलती है
मुमकिन है अभी अँधेरा हो ज्यादा

◆

एक सुन्दर सपना

अपनी राह लेंगे बेसब्र लालची
नंगे घूमेंगे कपड़े फाड़कर शासक
आततायी

फूलों की ज़िद होगी कि खिलेंगे
चिड़ियों से भरा होगा आकाश
स्मृतियों की तरह गझिन होंगे जंगल
नींद के इलाकों में नहीं होंगे आखेट

यह सब एक सुन्दर सपना है
जिसकी ओर चलते जायेंगे बहुत सारे लोग
अरक्षित, है जो पता नहीं कितनी दूर
किन्तु अपराजेय

◆◆◆

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अभय कुमार 'बेबाक' की ग़ज़लें एवं रुबाईयाँ

(हिन्दी में पहली बार उर्दू के मशहूर युवा शायर 'बेबाक' जी को पेश करते हमें यकीन है कि हिन्दी काव्य-पाठक समुदाय, उनकी मर्मशील दृष्टि एवं शैली का सशक्त सघन प्रभाव महसूस करेंगे —सम्पादक)

ग़ज़लें

1

तेरे जमाल पर ही सभी की निगाह है
शाहिद हूँ इसका मैं तो ख़ुदा भी गवाह है

अब जल रहा है शहर कि रौशन गुनाह है
ये चाँद रात हद से ज़ियादा सियाह है।

जिन बस्तियों के ज़ख़्म हरे हैं ख़मोश हैं
नेज़ों की नोक पर मगर अब तक कराह है

सुनते हैं इन्क़िलाब ने तेवर बदल दिये
जम्हूर की निगाह में हर फ़र्द शाह है

'बेबाक' है अंधेरा इक-इक राहे आमपर
सब मशअलें जली हैं जिधर शाह राह है

2

हम कहेंगे फ़साना रो रो कर
दिल को हम मारते रहे ठोकर

फ़र्क किस बात का है 'अब तब' में
गो कि आए हैं चाँद से होकर

नंग-ए-तहज़ीब हो गए हम लोग
नस्ले आदम की आदतें खोकर

फस्ले गम काटनी पड़ी है हमें
हर दफ़ा दोस्त राहतें बोकर

मिल गई पहले ही ख़ज़ाँ वरना
हम भी रहते बहार के होकर

वक़्त 'बेबाक' हमसे क्या चाहे
सोच पाए न जागकर, सोकर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

3

सौ-सौ गम दिल पाता है
फिर भी हँसता गाता है

मेरी दुनिया का सूरज
दिन रहते छुप जाता है

कच्चे धागे सा जीवन
हमने हर पल काता है

रहगुजर क्या घर में अब
इन्साँ ठोकर खाता है

ख़ोशा ख़ोशा फ़स्लों का
बादल आ ! चिल्लाता है

रौंद के दश्त-ओ-सहरा को
जाने वाला जाता है

किस को किस को रोएँ अब
पल दो पल का नाता है

गाहे-गाहे क्यूँ 'बेबाक'
ये संसार रिझाता है

4

अपना सादा सा दिल है
लेकिन थोड़ा गाफ़िल है

दरिया है पानी-पानी
सहमा सहमा साहिल है

फ़िक्र की इक इक आहट में
अपनी सदा भी शामिल है

वीरानों की सिम्त न देख
घर में बगूला दाख़िल है

देखें तो हम भी 'बेबाक'
कातिंल कैसा क़ातिल है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

5

मेरी कुछ न चल सकी थी मेरी मुश्किलों के आगे
मेरा अज़्म ले के आया मुझे मंज़िलों के आगे

मैं भँवर के दरमियाँ हूँ तो सुकूँ से क्यूँ न डूबूँ
मेरा सर झुका नहीं है क़भी साहिलों के आगे

न किसी से ख़ौफ़ खाना न शिकस्ता रंग होना
य सलासिले सफ़र है तेरे फ़ासिलों के आगे

मैं गुबार-ए-राह ठहरा तो रहूँगा मैं सफ़र में
कभी क़ाफ़िलों के पीछे कभी क़ाफ़िलों के आगे

ज़िन्हें मैं समझ रहा था कि मुहाफ़िज़े वतन हैं
वो निकल गए हैं अब तो कई क़ातिलों के आगे

मैं ज़मीन देख आया, मैं खुला में घूम आया
कहीं कुछ जँचा न मुझको तेरी महफ़िलों के आगे

6

किसी की ज़ुल्फ़ नहीं लब की गर्मियाँ भी नहीं
गुलों को छूने को आवारा तितलियाँ भी नहीं

अभी य हाल हुआ उस प कश्तियाँ गुज़रें
वो गाँव जिस प कभी छाँयीं बदलियाँ भी नहीं

य घर है मेरा क़ि दीवारों की नुमाइश है
कोई किवाड़ तो क्या इसमें खिड़कियाँ भी नहीं

गराँ थी रात बहुत सुब्ह भी हरासाँ थी
उ़फ़क़ प शह के उभरीं जो सुर्ख़ियाँ भी नहीं

किया है हम से मुहब्बत में उस ने जो 'वेबाक'
हुआ वो हम से अदावत के दरमियाँ भी नहीं

7

वो है सहर की सिहरन भी
भौरों की है गुंजन भी

- दुनिया है इक दुल्हन भी
झीनी-झीनी चिलमन भी

फ़िक्रें भी हैं उलझन भी
ज़ह्न है अपना रौशन भी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तोड़ चुकी सब बंधन भी
फ़िक्र है अपनी जोगन भी

दिल है शिकस्ता दर्पन भी
इश्क़ का है ये मदफ़न भी

चश्म से बरसे सावन भी
हिज्र की रातें बैरन भी

पहले बचाओ दामन भी
फिर होने दो अन-बन भी

बस में दिल भी है मन भी
कुछ तो सम्भालो तुम तन भी

गुमसुम गुज़रा बचपन भी
फूट के रोया यौवन भी

रस्ते भी हैं मस्कन भी
रहबर भी है रहज़न भी

दुनिया दुनिया है 'बेबाक'
मुक्ति भी है और बंधन भी

◆◆◆

रुबाई

1

वो शह्र तिरा और मिरा गाँव कहाँ
दहलीज़े तरक़्क़ी प टिकें पाँव कहाँ
कागज़ प तो उग आए हैं उम्मीद के पेड़
धरती प है राहत की कोई छाँव कहाँ

2

गुरबत में जो जुल्मत की बला टल न सकी
तो सुब्ह के होने से भी शब ढल न सकी
बिजली की तरह दिल में रहे ख़्वाब खाँ
ताबीर की कंदील मगर जल न सकी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

3

शोलों की शहादत प सज़ा आब को क्यों
वहशत ने हवा दी दिले बेताब को क्यों
मुंसिफ़ की जसारत प ताज्जुब है बहुत
मुट्ठी में उठाता है वो सीमाब को क्यों

4

तारीख़ शनासी के वो मेयार तो हों
ज़ख्मों की जराहत के कुछ औज़ार तो हों
ज़ंगल के क़वानीन बदलने के लिए
सरदार क़बीलों के भी तैयार तो हों

5

जज़्बात मशीनों की गरारी प चलें
इंजन में किरासन की जगह अश्क जलें
है कारगहे ज़ीस्त की तकनीक नई
इन्सान भी पुर्ज़ों की तरह मिल में ढलें

6

यूँ ड्रिंक्स डिनर ने तो बड़ा ज़ोर किया
म्यूज़िक के बहाने भी बहुत शोर किया
क्लचर है तेरा पाँच सितारा लेकिन
फ़ैशन के तिरे वर्ल्ड ने बस बोर किया

7

आए हो पुलिस में तो भलाई भी करो
इन्साफ़ की ख़ातिर ही लड़ाई भी करो
इन्सानों से पेश आओ मुहब्बत से मगर
शैंतान के बच्चों की पिटाई भी करो

8

ये पूछ न मुझ से कि ज़माना क्या है
सच कह के तिरा दिल भी दुखाना क्या है
जव रुह से ही ज़िस्म का रिश्ता न रहा
संसार के रिश्तों का ठिकाना क्या है

◆◆◆

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शांति सुमन की कविताएं

नया दिन

यह नया दिन उगा भीगी आँखों में
बच्चे की हँसी की तरह
हँसी जैसे सूखते कपड़े छतों पर
लाल स्याही ढरकती पूरे खेतों पर
धान-बाली फूट जायें बात में
नदी की उजली धार की तरह
थरथराते पुलिन की गवाह एक चिड़िया
दूर जाकर बहुत फिर से लौटता दरिया
फूल होती पंखड़ी की बाँह में
बजती खुशबू प्यार की तरह
बात कि प्यासी नदी सूखी न थी
और पछुवा चैन की भूखी न थी
फूल, धूप, गंधों के गाँवों में
दो-तीन सपने हजार की तरह

◆◆◆

मिट्टी की भाषा

अँखुओं में है रूप ले रही
जो मिट्टी की भाषा
ऋतु आने पर उसका आखर-आखर पढ़ना
हरियाली में उभर रहे उपमानों के माने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

फूलों में आकार लिये रूपक के नये घराने
रेहों में है पनप रही
जो मीठे फल की आशा
उस आशा को आंक रही कोई कविता लिखना

सूरज की किरणों से है धरती अब लगी सँवरने
चन्दा बाँटेगा सबको भर-भर दोने सपने
आँखों में जो है दहक रही
वह आग फेंकती पासा
उसकी चिनगारी के कण को सदा जुगाये रहना
सुख से भरी हुई यह धरती गाती कोमल गाने
जीवन-रस से भरी हुई हैं इसकी सुन्दर तानें
बात-बात में बरस रही
जो कह दो कभी जरा सा
मन को छूनेवाली बातें कभी नहीं कहना।

◆◆◆

नया कबीर सा

चनकी कलाई की चूड़ियाँ
उड़ा मन जैसे अबीर सा
झूमर गा रही सोनपाखी
बरगद ने बजा दिये ढोल
नीड़ों में चुनचुन की झंकारें
ईमन भरे घुंघरू के बोल
हवायें मानती नहीं दूरियाँ
हँसता है पीपल अमीर सा
राख में भी उड़ने के हौसले
भीतर कहीं बहुत दबा चिनगी
रूकने का नाम नहीं लेती
पत्तों की जिद में यह जिनगी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हरी हो गयीं सूखती डालियाँ
उजाला गाता फकीर सा
गंध को भी गंध की ही लालसा
प्यार भी सपना रहा है प्यार
अपनापन लुटा रहा तीरों पर
सागर का सपना है ज्वार
धूपों को बुला रही जालियाँ
दिन उगा नया कबीर सा

◆◆◆

गीत एक गाने का मन

जब-जब धरती सुन्दर होगी
आसमान होगा कोमल
तब-तब कोई गीत एक गाने का मन होगा
खूँटे पर रंभाती गायें
देखकर बछड़े दिन को
जैसे तोड़े छान, भगा
ले जाये पहरुओं को
फिर-फिर मन की रंग-भावना का गायन होगा
देख नदी को जैसे लहराये
सागर का पानी
झरने भी बन जाते पल में
जैसे औढरदानी
बरसेगा कोई अनहद भींगा सावन होगा
पहला दूध उगे जैसे
धानों की बाली में
और सिहन्ता की पौ फूटे
सूरज की लाली में
अपना पहला प्रेम पुतलियों का अंजन होगा
◆◆◆

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

धार की मछलियाँ

थरथराती टहनियाँ हैं
हिल रहे हैं पेड़
एक चर्चा, एक अंदेशा
बीतते दिन का
और चिड़िया ने सहेजा
एक नया तिनका
धार की ये मछलियाँ हैं
लहर लेतीं घेर

बूँद जैसे दबी हो भीतर
कहीं इस रेत में
फसल जैसे सूखती हो
भरे सावन खेत में
सूर्यमुख ये फुनगियाँ हैं
रही जल को टेर

दुख हो गये इतने बड़े
हम हो गये छोटे
शहर जाकर गाँव को हम
फिर नहीं लौटे
किसी ने पूछा नहीं है
समय का यह फेर

◆◆◆

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भरी हैं पत्तियाँ

टूटे नहीं पेड़ों के मन
इसलिये खड़ी हैं पत्तियाँ
पास कितने आ गईं
दाना जुगाये चोंच में
कहीं कुछ है, आँख भींगी
ठमकती हैं सोच में

कहाँ रोपे यह अपनापन
जड़ों तक भरी हैं पत्तियाँ

बात तो कुछ भी नहीं थी
बात फिर भी बढ़ गई
रोटियों की वर्णमालायें
वहीं से कढ़ गईं

एक छोटे ताल का दर्पण
खुशी में भी आज रोईं पत्तियाँ

खुश थी कितनी आज
जैसे रात में वारिश हुई
देखने में कहाँ लगता था
कि क्या साजिश हुई

जड़ों की इस तरह अनबन
समझने लगी हैं पत्तियाँ

◆◆◆

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अजय नांदे की कविताएं

अपराधी है कवि

कभी इतिहास के पन्ने पलटता,
तो कभी
ताजा ख़बरों की दुनिया में भटकता,
अपने समय से
अपने समय के शब्दों से
चुपचाप
अकेला ही लड़ता है कवि।
अकेला ही झेलता हुआ
बुरी खबरों की मार–
न जाने किस उधेड़-बुन में
रहता है कवि।

जमाने की बुराइयों को
पीछे ढकेलता,
अकेला ही उनसे
जूझता है कवि
किंतु, खुद अपने आप से
लड़ नहीं पाता है कवि।

अपने भीतर की कविता को
मारने का अपराधी है कवि।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बचपन याद करते हुए

याद आती हैं
वे पहाड़ी सड़कें–
कहीं से भी उतरती हुई,
नीचे की ओर।
सीढ़ियों पर कमतम भार देते
उठाये ज्यादा भार
वे नन्हें पाँव याद आते हैं
चुनते हुए–
धूप के छोटे-छोटे फल।

लंबी, सूनी सड़कों पर
अकेले दौड़ कर उतरता
उतरा मन।
उसे मालूम है–
बचपन तक लौटने के लिए
अब नहीं बची है कोई सड़क।

समतल पर,
ढलानों पर
पहाड़ी जंगलों के भीतर,
बार-बार टहल
लौट आता है मन,
जहाँ एक, सिर्फ एक आदमी के चलने भर
रहती है जगह
वहाँ अँट पाता नहीं मैं
और न मेरा बुढ़ाया मन।

◆

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आने दो उन्हें

बची रहने दो
थोड़ी गुंजाइश
आने दो उन्हें।
घोलने दो जीवन में थोड़ी मधुरता .....

मृत मन को बनाने दो
फिर से उर्वर
थके मन को करने दो
थोड़ा और श्रम
पसर गई गृहस्थी में
सींचने दो थोड़ी सरसता ....

मत रोको
आने दो उन्हें
फिर से अपने घर
रोक रक्खा है जिन्हें
तुमने मन के बाहर

अपने हृदय से हटा लो
अपनी बुजुर्गाना पहरेदारी
बचा रहने दो
पृथ्वी पर थोड़ा हरापन
प्रेम की थोड़ी उष्मा ....

रोको अपनी जिद
–अपना गुस्सा
मत रोको उन्हें
उतर आने दो
पुनः अपने अंक में !

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ध्यान रखना बेटा

हाथ बँटाना, सबका हाथ बँटाना
पर अपना ध्यान रखना बेटा !
ध्यान मत बँटाना !

साथ देना, सबका साथ देना
पर घर को मत भुला देना बेटा !

पढ़ना बेटा, खूब पढ़ना !
पर अपने पिता के अधूरे सपनों को पढ़ना मत भूलना
हो सके तो उन्हें पूरा करना !
करना, कुछ भला-सा करना
कुछ अलग नाम करना !

रखना बेटा, सँभालकर रखना
स्नेह के, आशीष के मेरे ये शब्द
अपने थपथपाए कंधों पर
संभाल कर रखना !
भूलना मत ! इन्हें याद रखना !

भले ही जमाने की हवा
तुम्हें बहा ले जाए मुझसे दूर
बहादुर बनना बेटा !
बहादुर बनना !

और चाहे कुछ भी न करना
जगना बेटा
समय रहते जगना
पिता—जैसा हर्गिज न बनना
समय रहते जगना !

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ताकि तुम्हें अपने बेटों को
यह न पड़े कहना
कि समय रहते जगना !

◆

उत्सव : एक

इस उत्सव की उत्तेजना से अलग हो
क्या कभी खोजी है तुमने
इतिहास में इनके जनमने की कथा ?

पहली बार इसकी शुरुआत
की बेचैनी
कैसे झेली होगी
तुमने अपने बचपन में
सपनों और खिलौनों के बीच ?

पहली बार जब आग के ताप का
अनुभव हुआ होगा तुम्हें
पहली बार जब बर्फ के ठंढेपन का
स्पर्श किया होगा तुमने
और तुम निकल पड़े होगे
अपने ही भीतर से उछलकर बाहर

हर तरफ बढ़ा होगा
तुम्हारा दोस्ती का हाथ
समूची पृथ्वी का दबाब अपने उपर लिए
सबसे मिलने
बढ़ चले होगे तुम !

◆

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उत्सव : दो

किस तरह सहेजी होगी
तुमने पहली बार
अपनी यादों में मिट्टी की गंध
और स्कूल से एक ढेले को
ठोकर मारते
लौटे होगे घर !

जाने कैसे पला होगा तुम्हारे भीतर
पहाड़ी जंगली पत्तियों का
खट्टा-मीठा स्वाद
कि और-और स्वाद की तलाश में
निकल पड़े होगे तुम !

जंगल के हरेपन के बीच
वयस्क होते, अपने निकट
एकदम-से अपने निकट
एक अंतरंग मित्र की जरूरत से
जाने कब बेचैन हो उठे होगे तुम !

भूकंप की थरथराहट से
जैसे काँप-काँप जाती है धरती
काँपा होगा वैसे ही
तुम्हारा भी मन !

◆

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उत्सव : तीन

अपनी ही चीज
बाँटकर खाने के लिए
संग-साथ
अपना ही सुख-दुख
बाँटकर जीने का सुख
ऐसी है बचपन की याद

लेकिन उसके बाद ?

◆

उत्सव : चार

उनसे मिलना–सबसे मिलना
सबसे मिलना–खुद से मिलना
रहती थी कभी उत्सव-सी धूम
पर कहाँ ... कहाँ मिल पाते अब खुद से हम !

कितना कठिन है अब
अपने लिए अपनों का साथ
कितना दुर्लभ है थोड़ा एकांत
और सुनने के लिए शांत एक मन
साथ चलने
अचानक चल पड़ने के लिए
उद्धत एक जन !

कितना कष्टसाध्य है
इस तरह एक कविता रचना
अनवरत् ... चुपचाप ....
उत्सव पर–उत्सव की स्मृति में !

◆

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

· तुम्हारे पास क्या है

उनके पास अनुभव है
मिट्टी और हल का अनुभव
तुम्हारे पास क्या है ?

उनके पास अनुभव है
संघर्ष और क्रांति का अनुभव
तुम्हारे पास क्या हे ?

उनके पास अनुभव है
धन और विलासिता का अनुभव
भोले-मासूम हृदयों को छलने का
छलनी करने का अनुभव ....

उनके पास वादा है
देने के लिए झाँसा है
क्या नहीं है उनके पास ?
तुम्हारे पास क्या है ?

◆

फ़र्क पड़ता है

कोई है, कोई नहीं
क्या फर्क पड़ता है !
मशगूल हैं सब
सबके पास है अपनी मस्ती
अपना सुख
दुख अपने हिस्से का
धुन अपनी खास

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सबके पास !

कोई है–तो है
नहीं–तो नहीं
क्या फर्क पड़ता है !

पर कभी किसी का न होना
खलता है
चलो, किसी का न होना
कभी तो खलता है !

◆

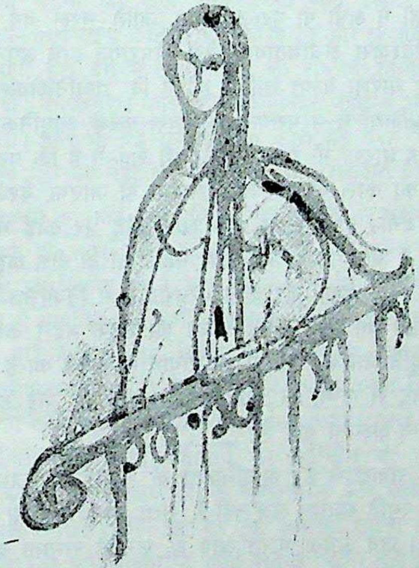

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सोच-विचार

◆ डॉ० शंभुनाथ

आधुनिक पुनर्जागरण की प्रस्तावना

उत्तर-आधुनिक परिदृश्य में आधुनिकता को एक निष्फल परियोजना माना जाए या असमाप्त ? बीसवीं सदी के अंत तक भी, यह स्पष्ट है कि दुनिया का कोई समाज पूर्णतः आधुनिक नहीं हो पाया। पश्चिम के तथाकथित विकसित समाजों सहित दुनिया के सभी समाजों में अभी भी पुराजातीयता, जाति, नस्ल, वर्ग, पितृसत्तात्मकता, लिंग-भेद, धार्मिक अंधविश्वास, क्षेत्रीयतावाद जैसे परंपरागत ढांचे अपनी गहरी जड़ों के साथ बरकरार हैं। यह धारणा गलत साबित हुई है कि आधुनिकीकरण, औद्योगीकरण और शहरीकरण की प्रक्रिया में परंपरावाद का ध्वंस करके आधुनिकता पूरी तरह आ जाएगी। उसी तरह यह धारणा भी गलत साबित हो सकती है कि परंपरावाद के काल की तरह आधुनिकता का काल भी पूरी तरह समाप्त हो जाएगा, वैश्वीकरण पूरी तरह उत्तर-आधुनिकता ला देगा। इतिहास के एक ख़ास बिंदु पर कोई भी समाज न पूरा परंपरावादी हो सकता है और न पूरा आधुनिक, वह दोनों के बीच कहीं होता है। कभी आधुनिकता की तरफ बढ़ता हुआ और कभी परंपरावाद में निर्वासित होता हुआ। यदि अठारहवीं-उन्नीसवीं सदी का समय आधुनिकता की तरफ बढ़ने का था तो वर्तमान समय निर्बुद्धिपरक आधुनिकता के रास्ते से परंपरावाद में लौटने का है। आधुनिकता 'है' और 'चाहिए' के द्वंद्ववाद से जन्मी थी, जबकि परंपरावाद 'है' और 'था' की संतान है, उसके पास कोई भविष्य-कल्पना नहीं है!

आधुनिकता संकट में है। आधुनिकता के साथ–साथ जातीय स्मृतियां भी संकट में हैं। दरअसल स्मृति स्वायत्त क्षेत्र नहीं है, सत्ता की विचारधारा सबसे पहले यहीं अपने बंकर बनाती है। जब अंग्रेज भारत आए थे, उन्होंने सभ्यता का बाना ही नहीं धारण किया था, औपनिवेशिक हित में जातीय स्मृतियों का पुनर्पाठ भी तैयार किया था। उन्हें भारत के लोग 'नेटिव्स' लगे थे। कहना न होगा कि भूमंडलीकरण समाज से आधुनिकता के चिह्न ही मिटाने पर नहीं तुला है, वह हमारा स्मृतिध्वंस भी कर रहा है,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ताकि 'लघु आख्यानों' के नाम पर समाज में नस्ल, धर्म, जाति, पुराजातीयता, क्षेत्रीयता की आग भड़काई जा सके। उपभोक्तावाद का सिक्का चले और कट्टरतावाद भी पनपे, बाजारवाद के दोनों हाथों में लड्डू हो।

यह गौरतलब है कि नवजागरण ने ही सबसे पहले संगठित रूप में समाज सुधार के प्रयत्न किए और हमारी परंपराओं की आधुनिक व्याख्या दी। हमारा इतिहास का अन-उपनिवेशन भी किया और संस्कृति का आधुनिक विकास किया। इसने इस देश की जातीय स्मृतियों का बुद्धिसम्मत पुनर्गठन किया, अतीत के प्रभेदवादी तत्त्वों को उकसाने की जगह छांटा-वह एक अनोखा राष्ट्रीय जागरण और मानवतावाद था। उस दौर में बिना औद्योगीकरण के भी कला, साहित्य, जातीय चेतना, शिक्षा और संस्कृति सभी में विकास आया था। बौद्धिक और सामाजिक गतिशीलता आई थी। सबसे महत्वपूर्ण चीज थी 'संदेह'। नवजागरणकालीन आधुनिकता में संदेह मुख्य प्रवृत्ति थी, मनुष्य के मन में प्रश्न जन्म ले रहे थे। समाज में तर्क का बोलबाला बढ़ रहा था। तर्क के कई औजार परंपरा की धातुओं से भी बने थे। यह सती प्रथा, विधवा विवाह, स्त्री शिक्षा, शूद्र के समानाधिकार के मुद्दों पर देखा जा सकता है। लोग अतीत के प्रसंग उठाकर एक नए भविष्य के लिए अतीत से लड़ रहे थे। अतीत की निर्माणकारी विरासत के प्रति आधुनिक चेतना का रूख सकारात्मक था। 19वीं सदी को सांस्कृतिक आधुनिकता का काल कहा जाना चाहिए। आधुनिकीकरण और औद्योगीकरण में औपनिवेशिक अवरोधों के बावजूद इस युग में आधुनिकता की राष्ट्रीय शक्ति से भरे अनोखे रूप विकसित हो रहे थे। नवजागरण काल की आधुनिकता राष्ट्रीय आत्मपहचान के व्यापक संघर्ष से जुड़ी थी। फिर भी वह युरोपकेंद्रिक सोच की तरह 'हम' और 'वे' के क्रूर विभाजन की तरफ नहीं बढ़ रही थी, इस खूबी को रेखांकित किया जाना चाहिए।

आधुनिकता का कोई एक वैश्विक मॉडल नहीं हो सकता। यह अलग बात है कि आधुनिकीकरण के साथ-साथ औपनिवेशीकरण से उसके संपर्क की वजह से पश्चिमी मॉडल ही आधुनिकता का वैश्विक मॉडल बन गया। हमारे जीवन की हर चीज यूरोप के इतिहास से प्रभावित होने लगी। साहित्य में हाल तक केवल वही सब आधुनिक था, जो यूरोपीय बुद्धिजीवियों द्वारा निर्मित था। इसलिए खासकर हिन्दी साहित्य में स्वातंत्र्योत्तर आधुनिकता का परंपरा से जरूरत से ज्यादा तनाव था, हर नई आधुनिकता पिछली आधुनिकता को रौंदती हुई आती थी। वह अपनी परंपरा से ही नहीं समाज से भी प्रायः कटी होती थी। उसमें अवांगार्द का सार्वभौम बोध जरूर था, पर कोई 'विशिष्टता' नहीं थी। वह एक खास दौर में नवजागरण और छायावाद की भी शत्रु बन चुकी थी या उनसे उदासीन थी। यह भी एक अनोखी घटना है कि हिंदी के किसी बड़े आधुनिक लेखक ने आधुनिकता पर कोई स्वतंत्र चिंतन नहीं किया, वे इस हद तक सार्वभौम 'शार्टकट' वाले और 'मैं' बद्ध थे। हिंदी में आधुनिकता-संबंधी ज्ञान इतना अधकचरा रहा है कि परंपरा और आधुनिकता को ही नहीं, आधुनिकता और आधुनिकतावाद को भी लड़ाकर देखा गया, जबकि आधुनिकतावाद आधुनिकता का ही

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एक उग्र विस्तार है। प्रगतिशील और यथार्थवादी चिंतन में आधुनिकता एक अछूत की मानिंद थी।

हिन्दी में प्रेमचन्द यथार्थवादी थे, प्रसाद छायावादी और अज्ञेय आधुनिक थे। प्रेमचंद और प्रसाद आधुनिक नहीं थे। आधुनिकता को अकेलापन, विच्छिन्नता, द्वैध, अनिश्चितता, पदार्थीकरण, निस्सहायता, भय, निराशा, संत्रास आदि का पर्याय बना दिया गया। इससे स्पष्ट हो जाता है कि एक खास दौर में आधुनिकता के प्रति दृष्टि कितनी संकुचित थी, उसका संबंध 'तर्क' और 'संदेह' से कितना टूट गया था। फिर भी व्यक्ति-स्तर से स्वतंत्रताबोध और पूंजीवादी व्यवस्था के विरोध या उससे उदासीनता ने आधुनिकताबोध को झीने स्तर पर बचा रखा था। मानवीय मूल्य का अहसास मूल्यहीनता के वातावरण में नदारद नहीं था।

आधुनिकता और यथार्थवाद यद्यपि दो दृष्टिकोण हैं, पर इनमें निकट का संबंध है। आधुनिकता की बुनियादी परियोजनाएं यथार्थवाद को विकसित करनेवाली थीं। इसलिए दोनों को एक-दूसरे से ताकत हासिल करनी चाहिए थी। दीर्घकाल तक दोनों के संबंध-विच्छेद से दोनों का क्षय हुआ और उत्तर–आधुनिकतावाद आ गया, जो उत्तर-यथार्थवाद भी है।

दरअसल आधुनिकता को निरंतरता और विकास में न देखकर टुकड़ों में देखने की वजह से उसके बारे में कई भ्रम बने। दो सौ सालों की अपनी छोटी-सी विकास-यात्रा में आधुनिकता ने तर्क, बुद्धि और अनुभव के बल पर कई प्रचलित रूढ़ियों, मिथ्या प्रभेदों और कृत्रिम सीमारेखाओं को तोड़ा है। औपनिवेशिक और कट्टरवादी तत्वों की उपस्थिति में ही उसने अपनी अजस्त्र शक्ति का बार-बार अहसास कराया है जब एक आधुनिकता खुद रूढ़ि बन गई, एक दूसरी आधुनिकता सीमारेखा को तोड़कर नई खोज में निकल पड़ी। उसने कई तरह से भारतीय समाज को अतीत के डरावने अंधकार से बाहर निकालने की कोशिश की, परंपरा के साथ-साथ यथार्थवाद से भी उसका संपर्क बना। निश्चय ही नवजागरण, छायावाद, प्रगतिशील साहित्य, नए आधुनिक आंदोलनों और क्रांतिकारी जोश में खारिज कर दिए गए एक बड़े साहित्य भंडार के बारे में एक नए दृष्टिकोण की जरूरत पैदा हो चुकी है। कोई साहित्य सिर्फ इसलिए त्याज्य नहीं है कि उसमें वर्ग-संघर्ष की चेतना नहीं हैं हमारे समाज के साथ-साथ साहित्य में अन-औपनिवेशिक आधुनिकता के लिए लंबा संघर्ष चला है, क्योंकि इसी प्रक्रिया में बुद्धिवाद, राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय इतिहास-लेखन, धर्मनिरपेक्षता, लिंग-भेद और जातिवाद से मुक्ति बहुजातीय भारतीय राष्ट्र की अवधारणा, जनतांत्रिक चेतना तथा विश्वमानवतावाद जैसी चीजें सामने आई हैं। निःसंदेह आधुनिकता ने व्यक्तिवाद, अफसरशाही, विशेषज्ञों पर निर्भरतावाद और घरेलू उपनिवेशन जैसी समस्याएं भी पैदा की हैं। इनका हल निकालने के दावे के साथ आर्थिक उदारीकरण आगे आया है। लेकिन क्या लगता है कि आधुनिकता की दो सौ वर्षों की महान परियोजनाओं को ठप्प करके आर्थिक उदारीकरण

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

या वैश्वीकरण मानवता की पुनर्रचना के रास्ते पर थोड़ा भी आगे बढ़ पाएगा ? हर युग की मानवता अपने को पुनर्परिभाषित करती है। वैश्वीकरण मानवता की पुनर्परिभाषा है या उसके बचेखुचे तत्वों के भी ध्वंस की भाषा ? वैश्वीकरण आधुनिकता की असमाप्त राष्ट्रीय परियोजनाओं के बिना एक अंधी गली है।

यह भूलना नहीं होगा कि दुनिया की एक बड़ी आबादी में आधुनिकता का प्रवेश औपनिवेशिक लक्ष्यों के साथ हुआ था। यूरोप में आधुनिक युग की शुरूआत अमेरीका के मूल निवासियों के व्यापक नरसंहार, सांस्कृतिक सफाए और लूट से हुई थी। इसके अलावा अफ्रीका से बड़ी संख्या में लोग अमरीका में गुलाम बनाकर लाए गए थे। पश्चिम की सभ्यता ने 1442 में कोलंबस द्वारा अमरीका की खोज से लेकर 1947 में भारत के स्वाधीन होने तक अपनी औपनिवेशिक छाया में आधुनिकता के जो मॉडल तैयार किए वे काले दागों से भरे हुए थे। वे उत्तर-औपनिवेशिक देशों के हुबहू उसी रूप में मॉडल नहीं हो सकते थे। उत्तर-उपनिवेशवाद का एक अर्थ उत्तर-औपनिवेशिक समाज में मौजूद सैकड़ों साल की औपनिवेशिक विरासत और नव-उपनिवेशवाद से संघर्ष भी है। हमारे लिए 'उत्तर-औपनिवेशिक' का वह अर्थ नहीं होगा, जो ब्रिटेन बताता है। पश्चिम के लिए उत्तर-उपनिवेशवाद स्वाधीन हुए देशों के नए इतिहास से शुरू होता है, हमारे लिए नहीं। हमारे लिए उत्तर-उपनिवेशवाद औपनिवेशिक अतीत के बारे में एक जातीय सोच है, साथ ही वर्तमान समाज में बची हुई और लगातार फूल-फैल रही औपनिवेशिक विरासत के प्रति भी एक गहरी चिंता का मामला है। हमारे लिए आधुनिकता का वह अर्थ नहीं है, जो यूरोपीय या अमरीकी निर्मिति है। दुनिया में तर्क, स्वातंत्र्य और बराबरी की एक दिशा नहीं हो सकती, क्योंकि दुनिया के हर देश और समाज की अपनी खासियत है। फिर भी आधुनिकता का एक वैश्विक मॉडल बार-बार प्रक्षेपित किया गया, जिस तरह वैश्वीकरण के युग में संस्कृति का एक खास मनोरंजनवादी रूप बड़े स्तर पर प्रक्षेपित किया जा रहा है। तर्क, स्वातंत्र्य और बराबरी या संस्कृति के कुछ वैश्विक मॉडल जरूर बनेंगे, लेकिन वे राष्ट्रीय आधुनिकता की सोच में कुछ घटा-बढ़ा ही सकते हैं, आधारभूत जमीन नहीं बन सकते।

भारत में जब आधुनिकता की धारणाएं बन रही थी, तब पश्चिम की आधुनिकताएं उसकी अपनी सभ्यता से, जिसे लेकर उसे बड़ा गर्व था, छीज चुकी थी। वहां के बौद्धिक लोग आत्मनिर्वासन महसूस करने लगे थे और पदार्थीकरण की यंत्रणा झेल रहे थे। पश्चिम की सभ्यता में छिपी मध्ययुगीन नस्लीय-धार्मिक-जातीय बर्बरताएं भी अंततः उभर आई। 11 सितंबर, 2001 के बाद अमरीकी नागरिक अचानक ग्लोबल से राष्ट्रवादी बन गए। नियोन रोशनी से जगमगाते हर रेस्तरां, पब, मनोरंजन केन्द्र और दफ्तर में अमरीकी झंडे थे। चारों तरफ झंडे ही झंडे थे। चीन से लाखों झंडे बनकर अमरीका आ रहे थे। सबको युद्ध चाहिए, औपनिवेशिक काल में बने 'डायस्पोरा' के असंतोष का किसी भी उपाय से दमन। विकास के रास्ते पर जो पीछे छूट गए हैं, जिनके बीच

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सुधारवाद का अभी पर्याप्त प्रवेश नहीं हुआ है. औपनिवेशिक चालबाजियों की वजह से जहां राष्ट्रीयता अभी भी विकासशील अवस्था में है, वहां पश्चिम की औपनिवेशिक आधुनिकता हो या उत्तर-आधुनिकता वह जो भी श्रेष्ठ बचा है, उसे छीनने के लिए ही पहुंचेगी। वह कुछ देगी नहीं, सिर्फ छीनेगी। उत्पीड़ित समाजों ने आधुनिकता के बगैर भी अपनी जातीय परंपरा से जीवन-शक्ति लेकर उपनिवेशवाद से लोहा लिया, उसने उपनिवेशवाद को आधुनिकीकरण मानने से इनकार किया। आज जातीय परंपरा और स्मृतियों के क्षेत्र में भी डकैती हो रही है--इसलिए विकास के साथ-साथ परंपरा के संदर्भ में भी आधुनिकता की पुनर्व्याख्या की जरूरत बढ़ी है।

हिंदी में आधुनिकता पर अपना ठोस चिंतन न आया हो, लेकिन रामचंद्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी और रामविलास शर्मा ने आधुनिकता का स्वागत करते हुए अपनी-अपनी जो रूझान व्यक्त की है, वह आधुनिकता की पुनर्व्याख्या और एक तरह से वैश्वीकरण के प्रति भी एक रूख बनाने में मददगार हो सकता है। रामचंद्र शुक्ल 'यूरोपीय साहित्य क्षेत्र में उठी हुई बातों की चर्चा' करना चाहते हैं, पर उनकी यह भी आकांक्षा है, "विज्ञान की साधना द्वारा समाज के वर्तमान युग का बहुत-सा रूप यूरोप का खड़ा किया हुआ है। पर इसका क्या यह मतलब है कि युग का सारा रूपविधान यूरोप ही करे और हम आराम से जीवन के सब क्षेत्रों में उसी के दिए हुए रूपों को लेकर रूपवान बनते चलें ? क्या अपने स्वतंत्र रूप विकास की हमारी शक्ति सब दिन के लिए मारी गई ?". वैश्वीकरण के युग में मनुष्य के लिए सबसे बड़ी समस्या है अवधारणा की स्वतंत्रता। अति-आधुनिकीकरण की तरफ तेजी से बढ़ते समाज के एक बड़े हिस्से में वस्तुतः आज आधुनिकता का क्षय हुआ है। क्या यह शक्ति सब दिन के लिए मारी गई है ?

हजारी प्रसाद द्विवेदी धर्म और ज्योतिष की धारा से साहित्य में आए थे। जरा उनके इन विचारों पर गौर करें, "ईश्वर का स्थान आज मानवता ने ले लिया है, पूजन-भजन के स्थान पर आज पीड़ित मानवता की सहायता और हमदर्दी प्रतिष्ठित हो चुकी है। प्राचीन धार्मिक विश्वासों की रूढ़ियों के हिल जाने के कारण आज के साहित्यिक ने संसार को नई दृष्टि से देखने का प्रयत्न किया है।" आधुनिकता का हर नवोन्मेष एक परिवर्तन भी है। विज्ञान की धारा से आकर भी आज के कई बुद्धिजीवी धार्मिक रूढ़ियों और ज्योतिष का प्रचार कर रहे हैं। कई हैं जो परिवर्तन से भागकर केवल विकास-विकास चिल्ला रहे हैं। इस बार आधुनिकता हिल गई है। हजारी प्रसाद द्विवेदी राष्ट्रीयता की अवधारणा को यूरोप की देन मानते हैं, "यूरोप में जन्मी हुई इस विचारधारा ने धीरे-धीरे भारत के विचारशील लोगों को प्रभावित करना शुरू किया। राष्ट्रीयता भारतवर्ष के लिए नवीन विश्वास थी।" इस आधुनिक अवधारणा का अभिनंदन करते हुए द्विवेदी जी तुरंत सावधान करते हैं, "यह राष्ट्रीयता एक सीमा तक मनुष्य के उच्चतर उद्देश्यों के अनुकूल थी, लेकिन सीमा व्यतिक्रम करने के बाद इसका एक अत्यंत कुत्सित रूप सामने आता है।' प्रथम विश्व युद्ध में यूरोपीय आधुनिकता का सबसे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जघन्य चेहरा दिखा था, जब अंध-राष्ट्रीयताएं मनुष्यता के खून की प्यासी बन गई थी। प्रेमचंद ने भी तब कहा था कि राष्ट्रीयता वर्तमान युग का सबसे बड़ा कोढ़ है। छायावाद ने भी बार–बार विश्वबोध की बात करके मानवता को देश की चौहद्दियों से मुक्त करके देखा था। राष्ट्रीयता आधुनिकता थी और विश्वमानवतावाद भी आधुनिकता था। आधुनिकता स्थिर नहीं थी। कहने की जरूरत नहीं है कि आज के वैश्वीकरण में विश्वमानवतावाद नहीं है। वह 'ग्लोबल' के नारे के बावजूद अंध–राष्ट्रीयताओं को उकसाने पर राष्ट्रीयता को धर्म और नस्ल से जोड़कर वस्तुतः रक्ताक्त संघर्ष की जमीन तैयार कर रहा है।

इतिहास से प्रस्थान या इतिहासबोध का ह्रास सामान्यतः उग्र–आधुनिकतावाद का लक्षण रहा है। साठोत्तरी निषेधवादी लेखक अपने को इतिहासहंता कहते थे। इतना ही नहीं, इतिहास को खारिज करते हुए कई पृथकतावादी आंदोलन बीसवीं सदी के शुरू से ही यूरोप में शुरू हो गए थे। अंग्रेजी राज में अंबेदकर और जिन्ना ने इतिहास से प्रस्थान करते हुए पृथकता की परियोजना बनाई, जिसे औपनिवेशिक स्वीकृति हासिल थी। 'पूना पैक्ट' के बाद अंबेदकर मान गए, पर जिन्ना की परियोजना सफल हो गई। उसका कुफल भारत और पाकिस्तान की जनता आज भी भोग रही है। कहा जा सकता है कि उत्तर-आधुनिकतावाद वस्तुतः 'इतिहास का अंत' नहीं, व्यापक जन-आंदोलन का भट्ठा बैठाकर 'लघु इतिहास' में हिंसक वापसी का मामला है।

पूंजीवादी विचारधारा यथार्थ को बार–बार विकृत करती है और दबाए हुए लोगों की एकता खंडित करने के लिए शोषणमूलक मानव–संबंध की वास्तविकताओं को छिपाती है। शक्तिशाली होकर उभरा आज का नव–पूंजीवाद यह काम अधिक बड़े स्तर पर कर रहा है। कभी आधुनिकता की अवधारणाओं ने विकास और अखंडता के बीच अंतर्विरोध पैदा होने से रोका था। बुद्धिवाद, राष्ट्रीयता और मानवतावाद आधुनिकता के मुख्य बौद्धिक औजार थे। इन्हीं औजारों से उसने तकनीकी प्रगति के साथ मानव मुक्ति का महाख्यान रचा था। दरअसल सत्ता की राजनीति ने आधुनिकता को दबाया, उसे विकृत किया। आधुनिकता जीवन के बाह्याकार और 'डिजाइन' आधुनिक होते गए, पर जीवन-दृष्टि में कूपमंडूकता ही बढ़ी। कोट-टाई और जिंस का उपयोग करनेवालों की अंगुलियों में ग्रहशांतिकारक अंगूठियां भर गईं। घर में वाशिंग मशीन आ गई, लेकिन घर में मेहमान आने पर चाय लड़की ही बनाएगी। आंध्रप्रदेश आईटी में सबसे आगे बढ़ा, पर किसानों ने सबसे अधिक आत्महत्याएं वहीं की। जिस राज्य में बड़े बांध बने, पीने के पानी के लिए दंगे भी वहीं हुए, शिशु बलि भी हुई। अंततः व्यापक स्तर पर घटित यह हुआ कि लोग बाजार के माल चुनने में ही फंस गए, सामाजिक परियोजनाओं से ध्यान हट गया। बाजारवाद का लक्ष्य सामाजिक परियोजनाओं का खात्मा है, मनुष्य के अंतःकरण का खात्मा है। न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी।

आधुनिकता नवोन्मेष का एक खास ऐतिहासिक रूप हे। यह निःसंदेह

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

औद्योगिक उत्पादन से जुड़ी दशा है। औद्योगीकरण के बाद अंतरवैयक्तिक व्यवहारों में वृद्धि हो जाती है। बड़े पैमाने पर मानव श्रम का पण्य में रूपांतरण होता है। वंश या व्यक्ति की जगह समाज द्वारा राज्य पर नियंत्रण होने लगता है। व्यक्ति के नागरिक अधिकारों का निर्धारण होता है। व्यक्ति के दायित्वबोध बढ़ जाते हैं और उसमे 'स्व' की प्रतिष्ठा होती है। सभ्यता सामूहिक मानव प्रगति की ओर अभियान करती है। वैयक्तिक रचनात्मक ऊर्जा और सामूहिक प्रगति के बीच सामंजस्य पैदा किया जाता है। मूल्यों की स्वायत्तता स्थापित होती है। मूल्य का संबंध धर्म से नहीं रह जाता, वह एक स्वायत्त मामला होता है। स्त्री का समानाधिकार और जाति व्यवस्था का खात्मा आधुनिकीकरण से बाहर के मामले नहीं है। समाज का आधुनिक रूपांतरण स्त्री-मुक्ति और दलितों के अधिकारों को कुचलकर नहीं हो सकता था। इनके अलावा आधुनिक युग में अदालत, शिक्षण-संस्थान, उद्योग, सामाजिक संगठन, परिवार, सरकार आदि सामाजिक इकाइयां अपना अलग-अलग स्वतंत्र अस्तित्व रखती हैं। व्यापारिक पूंजीवाद स्वतंत्र ढांचे में उपर्युक्त चीजें नहीं जुटा पाता। इसलिए आधुनिकता का संबंध व्यापारिक पूंजीवाद से नहीं है। फिर भी रामविलास शर्मा आधुनिकता को जातीय निर्माण की आरंभिक प्रक्रिया से जोड़कर कहते हैं, "समाज और साहित्य में आधुनिक काल 12 वी सदी से आरंभ होता है। सामाजिक स्तर पर इसके लक्षण हैं, सामंती व्यवस्था का विघटन, व्यापारिक पूंजीवाद का विकास, नए सामाजिक संबंधों का प्रसार, साहित्यिक स्तर पर इसके लक्षण हैं सामंत-विरोधी प्रवृत्तियों का उद्‌भव और प्रसार, नव-मानवतावाद को प्रतिष्ठा।" इसमें संदेह नहीं कि 19 वीं सदी की भारतीय सांस्कृतिक आधुनिकता का संबंध भक्ति आंदोलन की लोकजागरण-धारा से भी है। अंग्रेजी राज से पहले भी भारत में परिवर्तन की अंतर्धाराएं थी, लेकिन मूल्य-क्षेत्र में स्वायत्तता की मात्रा पर्याप्त नहीं होने की वजह से हम आधुनिकता की शुरूआत 12 वीं सदी से नहीं मान सकते। कबीर प्रगतिशील थे, पर उन्हें आधुनिक कहना जरूरी नहीं है। मुख्य बात यह है कि भक्ति आंदोलन के मानवतावाद का जोड़ उस समय पूरी दुनिया में नहीं था, भले वह मुख्यतः आध्यात्मिक तत्वों के बीच से पैदा हुआ था। रामविलास शर्मा कहना यह चाहते हैं कि अंग्रेजी राज से पहले का भारतीय जीवन यूरोपीय जीवन से अधिक श्रेष्ठ और समृद्ध था। उनका यह कथन यूरोपकेंद्रिकता का सही जवाब है।

आधुनिक समाज में ऐसे व्यक्तियों से साबका पड़ता है, जिन्हें हम नहीं जानते हैं। इसलिए मानव संबंध के निर्वैयक्तिक आधार बनते हैं। पुराजातीयता, सांप्रदायिकता, जातिवाद, क्षेत्रीयता और लिंग-भेद पर हमले तेज हो जाते हैं। बुद्धिवाद के असर में मूल्यांतरण होने लगता है।, सामंती व्यवस्था टूट जाती है। आधुनिकता का मुख्य विरोध सामंती व्यवस्था से है।

बुद्धिवादीकरण का एक पहलू धर्मनिरपेक्षता है। यह ऐसा आधुनिक तत्त्व है, जो भारत के उत्तर-आधुनिक परिदृश्य में कठोर चुनौतियों के बावजूद अभी भी पर्याप्त

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शक्तिशाली है। यह अक्सर होता है कि आधुनिकता और नैतिकता के बीच एक दूरी रेखांकित की जाती है। यह दूरी कृत्रिम है। आज आधुनिकता और संस्कृति के संबंध पर ज्यादा विचार करने की जरूरत है। आधुनिकता ने एक संस्कृति विकसित की थी, जिस तरह कभी परंपरा ने की थी। दोनों में संबंध हमेशा तनाव का ही होगा, यह बात नहीं है। इस संदर्भ में यह भी ध्यान में रखना होगा कि संस्कृतिविहीन आधुनिकता औपनिवेशिक निर्मिति है, जबकि आधुनिकताविहीन संस्कृति कट्टरतावाद की देन है। हमारा समाज नए दौर में दोनों के हमलों का शिकार है। आधुनिकता और संस्कृति का सही संबंध बन नहीं पा रहा है, जिस तरह टेक्नोलॉजी और संस्कृति का बना हुआ है। उत्तर-आधुनिकतावाद की सारी छेड़छाड़ और शैतानी संस्कृति के क्षेत्र में है। उसने मूल्य और संस्कृति के बीच विच्छेद पैदा कर दिया है। इस संस्कृति में रुपया-पैसा और मजा ही चरम मूल्य बन गए हैं। दूसरी ओर, संस्कृतियां परस्पर सौहार्द और अंतर्क्रिया की जगह शत्रुतामूलक होती जा रही हैं। वे निर्बुद्धिपरकता बढ़ा रही हैं। आधुनिकता एक आलोचनात्मक अवधारणा है, जिसकी विदाई संस्कृतिहीनता और अंधविश्वास में रमना है।

क्या आधुनिकता बहुत दमनकारी थी, उसमें सब कुछ बुरा ही बुरा था ? आधुनिकता ने मनुष्य के अंदर व्यक्ति को बचा रखा था, व्यक्ति खुद फैसले लेता था। उत्तर-आधुनिक परिदृश्य में व्यक्ति का विलोप हो रहा है, 'प्रतिपक्ष' की तरह ही 'व्यक्ति' मिट रहा है। साहित्यिक दुनिया के 'मैं-वादी' भी वस्तुतः 'व्यक्तिहीन' हैं। वे व्यर्थ ही समाज के शत्रु बने घूम रहे हैं, जबकि अब समाज लगभग है ही नहीं । उसकी जगह बाजार आ बैठा है। समाज नहीं बचेगा तो व्यक्ति भी नहीं बचेगा, यह बात मैं-वादियों को समझ में आनी चाहिए। वृहत्तर आख्यान नहीं बचेंगे तो लघु आख्यान भी अतंतः विघटित हो जाएंगे और एकध्रुवीय वैश्वीकरण छाएगा, यह बात भी समझ में आनी चाहिए।

आधुनिकता की अवधारणा में 'सार्वभौम' और 'विशिष्ट' के बीच या सामाजिक और वैयक्तिक के बीच कोई अंतर्विरोध नहीं था। आधुनिकता मनुष्य को विश्वमानवतावादी संदर्भों में सार्वभौमता की ओर ले जाती थी और विशिष्टता को भी भरपूर अवकाश देती थी। इसके सबसे अच्छे उदाहरण रवींद्रनाथ ठाकुर हैं, जो सार्वभौमता और बांग्ला संस्कृति दोनों से एक साथ जुड़े थे। सुब्रह्मण्य भारती, प्रेमचंद, निराला अन्य उदाहरण हैं, जो विश्वबोध और जातीय विशिष्टता में अंतर्विरोध नहीं देखते थे। वैश्वीकरण के युग में विशिष्टता और अस्मिता की रक्षा का दावा किया जाता है, लेकिन नजारा देखकर कहा जा सकता है कि सांस्कृतिक एकरूपता ही छा रही है। हर जगह वही रैप–पॉप, फास्ट फुड, खिचड़ी मनोरंजन और स्त्री के सेक्स बिंब।

यही सही है कि आधुनिकता की, मानव-स्वतंत्रता की मुख्य परियोजना अधूरी रह गई। लेकिन इसने अपने नातिदीर्घ इतिहास में दो खास चीजें दी, जो कभी अर्थहीन नहीं होंगी। वे चीजें हैं (1) तर्क और (2) बराबरी पर आधारित जनतंत्र। दोनों एक-दूसरे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के लिए जरूरी हैं। आज विभिन्न विमर्श में तर्क अभी भी जिंदा है, भले असहाय हो। जनतंत्र का ढांचा रुग्ण हो गया हो, पर आज भी राज्य का आदर्श राजनैतिक रूप वही है। विकसित तकनीक जनता को सुधार सकता है, उसका स्थान नहीं ले सकता। यदि आधुनिकता की मुख्य परियोजनाओं से आज भी संबंध मजबूत किया जाए तो मौजूदा दौर की सतही जिंदगी की बहुत-सी तुच्छताओं का अंत हो सकता है।

फूको, बाद्रिलार्द, ल्यौतार, डिल्यूजे आदि का चिंतन नव-औपनिवेशिक संस्कृति की छाया में जन्मा है, वह उपभोक्तावादी पूंजीवाद का दुमछल्ला है। उपभोक्तावाद और कट्टरतावाद अलग-अलग रास्तों से, एक आपसी समझंदारी के तहत दरअसल पिछले लगभग दो सौ सालों की आधुनिकता की यात्रा के बीच में रोक देना चाहते हैं। इसलिए हैबरमास ने इतिहास के अंत की धारणा को ही चुनौती नहीं दी, नवजागरण की परियोजना के अधूरेपन का सवाल भी उठाया। नवजागरण की परियोजना का अधूरापन औपनिवेशिक विघ्न का नतीजा है। यही वजह है कि आधुनिकता असुरक्षित 'जोन' बन गई। उसका विस्थापन या विकृतिकरण होने लगा। समाज के जोड़ों (ज्वायंट्स) में दर्द शुरू हुआ, फलतः निर्बुद्धिपरक सामाजिक भिन्नतावाद की प्रक्रिया शुरू हुई। वैश्वीकरण के ताजा हश्र को देखते हुए कहा जा सकता है कि तकनीकी और सांस्कृतिक दोनों ही मामलों में बुद्धिवादी-मानवीय नियंत्रण की जरूरत है। आदमी को टेक्नोलॉजी पर वरीयता देने की जरूरत है। मनुष्य का लक्ष्य टेक्नोलॉजी हो तो टेक्नोलॉजी का लक्ष्य भी मनुष्य हो। अभी टेक्नोलॉजी टेक्नोलॉजी के लिए है और कहीं-कहीं वह जबर्दस्त जीवन-विरोधी है, क्योंकि उसकी शक्ति का इस्तेमाल आधुनिकता की परियोजनाओं को आगे बढ़ाने में नहीं, उन्हें विकृत करने या मिटाने के लिए हो रहा है। मुश्किल यह है कि संदेह को पूरी तरह विदाई दे दी गई है, जबकि घृणा सींची जा रही है। कैसी विचित्र बात है कि आदमी अब खुद कुछ सोच नहीं रहा है, वह प्रश्न खड़े नहीं कर रहा है। उसकी आलोचनात्मक अंतर्दृष्टि सो गई है। वह इस हद तक खाली हो चुका है कि बाजार का कचरापेटी बन गया है।

आधुनिकता के गुणों, आदर्शों और उपलब्धियों का विघटन आज व्यक्ति को अधिकाधिक निर्बुद्धिपरक और सुखवादी बनाता जा रहा है। आदमी महापाखंडी होता जा रहा है या महाविदूषक। आधुनिकता की विदाई क्या सचमुच समाज को विकास की ओर ले जा रही है, यह प्रश्न नए सिरे से उठ रहा है। हम वैश्वीकरण की दिशा में काफी आगे बढ़ चुके हैं। फिर भी इसपर सोचना जरूरी है कि उसने विखंडता, बेरोजगारी और अपसंस्कृति के सिवाय हमारे समाज को और क्या दिया है। यह आकलन करने की जरूरत है कि आम आदमी तक वैश्वीकरण का फायदा कितना पहुंचा है, नुकसान कितना पहुंचा है। हम ये प्रश्न आधुनिकता के प्रति किसी नास्टेलजिया की वजह से नहीं, बल्कि एक ऐसा सामाजिक वातावरण बनाने के उद्देश्य से उपस्थित कर रहे हैं कि

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आम आदमी अपनी खोई सामाजिक परियोजनाएं पुनर्प्राप्त कर सके, वह विदेशी पूंजी और तकनीक का गुलाम होकर नहीं रह जाए।

यह सभी संस्कृतियों द्वारा अपनी विशिष्टता का संरक्षण करते हुए आधुनिकता की असमाप्त महान परियोजनाओं को पुनः हाथ में लेने की घड़ी है। यह आज से पहले कभी इतना जरूरी नहीं था, क्योंकि एकध्रुवीय भूमंडलीकरण ने सांस्कृतिक प्रभुत्ववाद का एक नया दौर शुरू कर दिया है, जिसमें भारत की सभी जातीयताएं, सभी संस्कृतियां और सभी क्षेत्रीयताएं और पहचानें कुछ ही सालों में अधमरी हो जाएंगी। कठिनाई यह है कि संस्कृति का क्षेत्र ऐसा है कि आम आदमी की तरफ से भले उपेक्षित हो, पर बाजारवाद ओर राजनीति का वह एक साथ मुख्य निशाना है। इसलिए जहां जरूरत अपनी भिन्न या विशिष्ट संस्कृति की नए सिरे से आलोचनात्मक समझ की है, दूसरी संस्कृतियों से अंतरक्रिया की भी है। हमें पश्चिम और पूर्व के विभाजन की जगह, निर्बुद्धिपरकता और बुद्धिपरकता में फर्क करना चाहिए और अपनी संस्कृति में 'दूसरे' के लिए अधिकाधिक स्पेस निर्मित करना चाहिए। दुनिया के कई दूसरे समाजों से भिन्न, भारतीय समाज में जातीय पहचानों के विस्तृत पुनर्गठन का कार्य अधूरा है, खासकर रूढ़िवाद और कलहवाद से जर्जरित हिन्दी समाज़ में। हिन्दी समाज का जातीय गठन दुर्भाग्यवश अभी तक एक ठप्प परियोजना है। इसके मार्ग में वैश्वीकरण और कट्टरतावाद की विचारहीन चीजें रुकावट डाले पहाड़ सी खड़ी हैं, जिनको धक्का देकर आधुनिक पुनर्जागरण लाने की जरूरत है।

आधुनिक पुनर्जागरण का अर्थ है जनता के पिछले लगभग दो सौ वर्षों के संघर्ष की उपलब्धियों की पुनर्प्रतिष्ठा और इसकी कमियों को पहचानकर आधुनिकता का विकास। सार्वभौमता और विशिष्टता के लड़खड़ाए रिश्ते को दुरुस्त करते हुए एकबार फिर बौद्धिक अन-उपनिवेश ! मनुष्य में स्वतंत्रता की नई भूख जगाना, उसकी सच्ची स्मृतियों और आशाओं की वापसी, उसके अंतःकरण की पुनर्प्राप्ति ! आधुनिकता एक निरंतर नवोन्मेष हैं। वह आज ठिठकी या सहमी हो, पर समाप्त परियोजना नहीं है। दरअसल आधुनिक पुनर्जागरण हमारे समय का प्रमुख एजेंडा है। इसके समक्ष चुनौतियां कम नहीं हैं। पर संभावनाएं कहीं ज्यादा हैं।

●●●

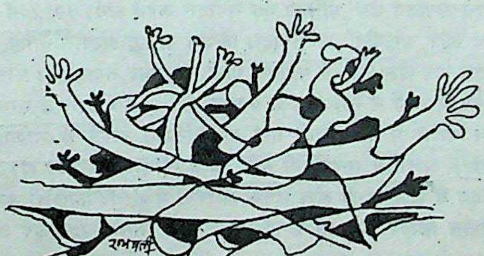

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

◆ कर्मेन्दु शिशिर

समाज का नैतिक संविधान : 'नीति-दर्शन'

हिन्दी नवजागरण में राधा मोहन गोकुल का नाम आज सुपरिचित न हो लेकिन वे एक महत्वपूर्ण रचनाकार थे। खासतौर से सामाजिक और राजनितिक पक्षों पर उनके क्रांतिकारी विचारों से गुजरना आज भी रोमांच पैदा करता है। वे विचारों के साथ-साथ व्यावहारिक क्रांतिकारी आचरण बरतते रहे। ईश्वर की सत्ता को वे नकारते थे और प्रत्यक्षवाद को स्वीकारते थे। धर्म के वे कट्टर विरोधी थे और इसे त्रासद समस्याओं की जड़ मानते थे। वे विज्ञान और तार्किक बुद्धिवाद के प्रबल पक्षधर थे। समाज में किसी भी प्रकार की असमानता, अन्याय और गुलामी–उन्हें सह्य नहीं थी। स्त्रियों और दलितों की समस्याओं पर उनके विस्फोटक विचार चकित करने वाले हैं।

उनका जन्म 1865 ई० में इलाहाबाद के पास भदरी नामक गाँव में हुआ था। उनकी शिक्षा गाँव के अलावे कानपुर और आगरा में हुई थी। 1884 ई० में इलाहाबाद के एकाउण्ट आफिस में काम के दौरान एक अंग्रेजी अधिकारी ने अपमानित किया तो उसे दो रूल जमाकर नौकरी छोड़ दी और अपनी शिक्षा के सारे दस्तावेज जला दिये। आगरा और कानपुर में रहते उनकी सतेज सक्रियता शुरु हुई और कलकत्ता से 'सत्य सनातन धर्म' पत्रिका का संपादन करने लगे। 1922 में वे नागपुर आये और 'प्रणवीर' का संपादन किया। प्रसिद्ध झंडा-सत्याग्रह में शामिल होकर जब जेल गये तो महात्मा गांधी ने उनपर संपादकीय लिखा। गणेश शंकर विद्यार्थी ने उनकी बड़ी प्रशंसा की। आगे चलकर वे साम्यवादी बने और भारत में साम्यवादी दल की बुनियाद रखने में सक्रिय योगदान किया। 'भारतीय साम्यवादी दल' के वे संस्थापक सदस्य थे। क्रांतिकारी जीवन में रासबिहारी बोस उनके अंतरंगों में से थे। काकोरी कांड के बाद संगठन बिखर गया तो उन्होंने फरारी के समय चंद्रशेखर आजाद को

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अपने पास रखा। अपने संपर्क में आये युवकों को शामिल करा कर फिर से संगठन खड़ा करने में उनकी केन्द्रीय भूमिका रही। भगत सिंह को साम्यवादी पुस्तकें पढ़वाने, उनसे बहस करने से लेकर संगठन में 'सोशलिस्ट' शब्द को जोड़ने का प्रस्ताव स्वीकृत कराने तक उनका मुख्य योगदान रहा। वे क्रांतिकारियों को हथियार भी उपलब्ध कराते थे, आर्थिक मदद दिलवाते थे। 1930 में वे दो वर्ष के लिए चौथी बार जेल गये तो बीमार पड़ गये। बावजूद यहाँ से निकलने पर बुंदेलखंड इलाके में किसानों की जन जागृति में जुट गये। वहाँ के सामन्तों और ब्रिटिश सत्ता ने उन्हें काफी प्रताड़ित किया और इसी क्रम में 1935 ई० में उनकी दारूण स्थितियों में पेचिस से मौत हो गई।

कथाकार-उपन्यासकार कर्मेन्दु शिशिर पिछले बीस वर्षों से नवजागरण पर अपनी तरह कर्मशील हैं और 'हिन्दी नवजागरण और राधामोहन गोकुल' उनका आखिरी काम है। यह लेख उसी काम का एक प्रारंभिक अध्याय है।

— संपादक

राधामोहन गोकुल का अपने समय-समाज से सरोकारों का जो रूप उनके लेखन में आया है–उसमें 'देश का धन' के बाद दूसरी महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'नीति-दर्शन' (दो खंड पृष्ठ सं० 427) ही है। इस पुस्तक को पढ़ने के बाद यह पता चल जाता है कि गोकुलजी की समाज के अँधेरे कोनों–अँतरों तक पहुँच थी। उनकी निगाह इतनी बारीक और पक्की थी गोया वे तत्कालीन समाज की एक्स-रे रिपोर्ट रख रहे हों। समाज के हर व्यक्ति के सारे सरोकारों, सबके प्रति नैतिक दायित्वों और इस सबसे बने सामाजिक व्यवहारों की नीतियों पर यह एक आश्चर्यजनक कोशिश है। इस पुस्तक के द्वारा जैसे गोकुलजी ने एक तरह से समाज का संविधान ही रच दिया है। यह कहने को नीति पुस्तक है लेकिन इसमें तो पूरी सामाजिक पड़ताल है और अपेक्षित आचार–व्यवहार की इसमें सुचिंतित व्यवस्था बतायी गई हैं।

इस ग्रंथ को पढ़ते हुए गोकुलजी के विचारों में मौजूद द्वंद्व को भी महसूस किया जा सकता है। ईश्वर की सत्ता और प्रकृति की सत्ता पर विचार करते हुए, वे दोनों की अभेदता सिद्ध करते हैं और भौतिकवादी प्राकृतिक मत के पक्ष में विस्तार से तर्क विकसित करते हैं। ईश्वर की सत्ता को मानने के प्रसंग में भी वे बुद्धिवादी तरीके और तर्क का सर्वथा त्याग नहीं करते, बेशक ईश्वर में उनका विश्वास तब कायम था। इस प्रसंग में उनकी जो बौद्धिक तर्कावली है–उसकी प्रकृति में अंतर हैं, लेकिन मेरा आशय यह है कि उनकी इस पुत्तक में ही वे सारे सूत्र हैं--जिसका परिष्कृत और विकसित रूप उनके अंतिम दौर के लिखे लेखों में मिलता है। जाहिर है इस प्रक्रिया में समय समाज के उनके सरोकारों और अनुभवों की भूमिका रही होगी। अध्ययन और विचार--विमर्श की निरंतरता में ही वे आर्यसमाज से मार्क्सवाद तक पहुँचे और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
'कम्यूनिज्म क्या है?' जैसी पुस्तक लिखी। इस सबके संकेत इस पुस्तक में मिल जाते हैं।

गोकुलजी ने अनुभव, अध्ययन से यह बात महसूस की, कि सत्ता और सरकार में अधिकार प्राप्त लोग किस तरह प्राकृतिक नीति के विरूद्ध ईश्वर और धर्म के नाम पर लोगों को लूटते हैं। कितनी बेरहमी से सताते हैं और क्षूद्र स्वार्थों के लिए घृणित और क्रूरतम अंधविश्वासों को बनाये रखते हैं। इनके षडयंत्र से ही लोग धर्म के नाम पर आपस में मरते-कटते हैं। इसी पाखंड के विरूद्ध उनमें रोष पैदा हुआ, जो अंतिम दिनों के लेखों में विस्फोटक रूप से फूटा। अज्ञानता, अन्याय, शोषण और पराधीनता उन्हें एकदम असह्य थी। यह बात उनके जीवन और लेखन, दोनों स्तरों पर बार-बार प्रमाणित हुई है। एक नैतिक दृढ़ता तो उनके स्वभाव का बुनियादी हिस्सा रही ही है।

नैतिकता के प्रति गोकुलजी का दृष्टिकोण बहुत ही व्यापक था। यही कारण है कि उन्होंने इस पर बड़ी गंभीरता से विचार किया है कि सामाजिक नीति कैसी होनी चाहिए? हम कैसा समाज बनाना चाहते हैं–इसी से प्रेरित और परिकल्पित ही नीतियाँ होनी चाहिए। ऐसी नीतियाँ जिसमें समानता, स्वाधीनता और न्याय रहे। साथ ही सभी के विकास की समुचित संभावना और सहूलियत भी हो। इसलिए गोकुलजी ने इस बात को समाज के व्यापक परिप्रेक्ष्य में, समग्रता से रखकर समझा–समझाया है। वे नीति सिद्धांतों पर विचार करते हुए उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि तक को कुरेदते हैं, लेकिन उनका मुख्य विचार हमेशा इसी बात पर होता है कि कोई भी नीति समाज के व्यावहारिक स्तर पर किस स्वरूप में रहे? समाज के किसी भी विधा या क्षेत्र में, जो जिस स्तर पर है – उसका क्या आचरण, कर्त्तव्य या सोच बने और क्यों बने? अपनी इस विचार–प्रक्रिया में वे पाश्चात्य और भारतीय विचारकों का सहज रूप से हवाला देते हुए उनके विचारों पर गंभीरता से सोचते–विचारते हैं। नीतियों को स्वीकार करने या नकारने का आधार, समय–समाज के प्रति अपने लक्ष्य और सरोकारों से ही तय होता है। अपनी मौलिक राय वे बिना किसी तामझाम के बेहिचक रख देते हैं।

'नीति–दर्शन' अकादमिक रूप से भी समृद्ध पुस्तक है। इसमें प्रभूत अध्ययन के पर्याप्त प्रमाण हैं। पुस्तक की प्रकृति भी दार्शनिक गंभीरता वाली है। लेकिन मूल रुप में पुस्तक इससे अलग है। इसमें सामयिक सरोकार बहुत ही स्पष्ट और सघन रूप में हैं। उनका मूल आशय था–समाज में बुनियादी स्तर पर बदलाव लाने का। उनका ऐसा सोचना था कि जब तक समाज अपने समय को नहीं पहचानेगा, अपना लक्ष्य निश्चित नहीं करेगा, उसके अनुरूप आचरण नहीं बरतेगा–तो मौजूदा हालात में बदलाव असंभव होगा। समाज में बिना बदलाव के बेहतर भविष्य की कल्पना भी बेमानी है। बेशक आज 'नीति-दर्शन' का महत्व सीमित है, लेकिन यह उपक्रम बहुत बड़ा है। नवजागरण का एक रचनाकार तत्कालीन समाज को सभ्य, सुसंस्कृत और विकसित बनाने के लिए व्यापक स्तर पर नीतियों के बारे में ठोस उपक्रम करता है, तो उसे समाज के संविधान

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

निर्माता का महत्त्व और गौरव मिलना चाहिए। इस दृष्टि से इस पुस्तक के महत्त्व को समझने की कोशिश होनी चाहिए।

'नीति–दर्शन' (प्रथम खंड) की भूमिका में 15 जनवरी 1912 ई० की तिथि है। इसकी 15000 प्रतियाँ प्रथम संस्करण में छपी थीं। उस समय गोकुलजी 'सत्य सनातन धर्म' का कलकत्ते से संपादन कर रहे थे और अपनी पुस्तकें खुद प्रकाशित करते थे। इसके पूर्व, अर्थशास्त्र की पुस्तक 'देश का धन' में लिख चुके थे। मैंने तत्कालीन पत्र–पत्रिकाओं में इसकी समीक्षा देखी थी और कुछ प्रशंसात्मक सम्मतियाँ भी पढ़ी थीं। तत्कालीन हिन्दी समाज में इस पुस्तक को बड़ी गंभीरता से लिया गया था और इससे एक विचारक के रूप में गोकुलजी को अतिरिक्त प्रतिष्ठा भी मिली थी। इस पुस्तक में उनकी बौद्धिक तर्कावली, विचार–संपन्नता और नये समाज की उत्कट चाह–गहरे स्तर पर प्रभावित करती है। कई दृष्टियों से यह पुस्तक उनके वैचारिक व्यक्तित्व को प्रभावपूर्ण बनाती है। इसलिए इसका संक्षिप्त आकलन होना चाहिए।

गोकुलजी इस पुस्तक के लिखने के पूर्व स्वामी दयानंद के संपर्क में आ चुके थे। उनसे हुई मुलाकात में शास्त्रार्थ हुआ और अंततः वे आर्यसमाजी बनें। 'सत्य सनातन धर्म' के द्वारा रूढ़िवादी सनातनवादियों के विरूद्ध वे संघर्ष भी कर चुके थे। बावजूद उनके सोच–विचार में आर्यसमाजी विचारों का अतिक्रमण भी था। मगर एक आर्यसमाज वाली नैतिकतावादी कठोरता– उनके स्वभाव का अभिन्न हिस्सा बन चुकी थी। सामाजिक सरोकारों में लगातार सघन और व्यापक रुप से नीतियों को व्यवहार में भी अपनाते जाने के कारण, उनमें निरंतर विकास हुआ और अंततः वे ईश्वर और धर्म के विरूद्ध हुए। भले वे ईश्वरवादी न रहे, मगर समाज--विमुख वे नहीं हो सकते थे। उन्होंने पुस्तक की भूमिका में स्वामी दयानंद के प्रति अतिशय आदर प्रकट करते हुए लिखा भी है कि वे उनके 'चिर–ऋणी' हैं– जिसके 'अनुग्रह' से बचपन में ही 'देश–देशी पदार्थ' और 'स्वदेशी भाषा' के 'गौरव' से वे परिचित हो सके। इससे उन्हें हिन्दी लेखक होने की प्रेरणा भी मिली।

'नीति–दर्शन' की वैचारिक हैसियत जो हो, लेकिन इसके लिखने का अंदाज अत्यन्त गंभीर था। अकादमिक अनुशासन और पद्धति का वे बडी दक्षता से अनुपालन करते हुए, इस पर समग्रता से विचार करते हैं। 'नीति-दर्शन' में 'नीति' से उनका तात्पर्य है– 'नीति मनुष्य के सहज कर्त्तव्य–पथ का नाम है।' स्पष्ट है वे सुसंस्कृत, सभ्य समाज के निर्माण में प्रत्येक नागरिक के सोच और आचरण की नीति तय कर लेना चाहते थे। ऐसी नीति–जिसके मूल में लोकमंगल हो ! 'सारे जगन्मंडल का आदर्श शुभेच्छु बनना ही जीवन का परम व उच्चतम अंतिम कर्त्तव्य निर्विकल्प भाव करना होगा।' 'इस मायने में दूसरा कोई विकल्प उन्हें मान्य नहीं था। स्पष्ट लिखते हैं' 'दुर्नीति से बचकर चलने की योग्यता की प्राप्ति इस ग्रंथ का मूल मन्तव्य है। यही मानवी धर्म है।' 'आस्तिकता के बावजूद उनका मूल भौतिक लक्ष्य है – 'मानव धर्म' !

इस पुस्तक को लिखने की प्रविधि ऐसी है जिससे सामान्य लोग भी विषय

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

को समग्रता और गहराई से जान लें। प्रस्तावना में उन्होंने नीति, दर्शन और नियम का तात्पर्य समझाया है। गोकुलजी का उद्देश्य 'नीति–दर्शन' पर अपनी धाक जमाने वाली पुस्तक लिखने की नहीं है, न ही भाष्य और मौलिकता का कोई प्रपंच है। समाज में कैसे बेहतर व्यवस्था कायम हो–यह उनका उद्देश्य था। लिखा है–'इस विषय के अनेक ग्रंथों की छानबीन करके इसको लिखा है। कहीं-कहीं जहाँ इनकी मत दूसरों से नहीं मिला अपना ही मत कारण सहित प्रतिपादित किया है–जहाँ अनेक मत हुए हैं वहाँ निज बुद्धि के अनुसार सर्वमान्य मत छाँटकर लिखा है और उसी मत-विशेष को सर्वमान्य होने के कारण पुष्ट किया है, पर ग्रंथ बढ़ने के भय से प्रत्येक मत का उल्लेख नहीं किया गया।'

पुस्तक का प्रारंभ परंपरागत शैली मंगलाचरण से हुआ है–जिसमें 'देशमाता' को इंगित करके लिखी कविता में उनका देश–राग व्यक्त हुआ है। फिर उन्होंने ज्ञान के दर्शनिक और व्यावहारिक पक्षों का अलग–अलग विस्तार से वर्णन किया है। इसमें पारिभाषिक पक्षों की व्याख्या से लेकर सिद्धांतों का विश्लेषण किया गया है। उनके लेखन की इस प्रक्रिया में गंभीर बौद्धिकता और तर्क की वैज्ञानिक पद्धति प्रभावशाली है। सबसे बड़ी बात यह कि उनके लक्ष्य में साधारण, सामान्य पाठक तक बात पहुँचे–यह भाव पूरी तरह शामिल है। वे बातचीत, व्यावहारिक जीवन की दिलचस्प घटनाओं अथवा प्रसंग-विशेष की चर्चा करने वाली शैली अपनाते हैं–जिससे सामन्य नागरिक से भी आत्मीय संवाद कायम हो सके। दूसरी बात यह कि वे क्रम दे–देकर अपने विचारों को इतनी स्पष्टता से लिखते हैं कि उनमें कहीं उलझाव नहीं मिलता।

सोच और आचरण के आधार पर ही समाज में आदमियों की स्थिति बनती है क्योंकि नैतिक आधार पर मनुष्यों में फर्क होता है। इसमें संदेह नहीं कि इस पुस्तक पर भारतीय आर्ष ग्रंथों का भी असर है। वे इस दौरान पूर्णतः आर्यसमाजी प्रभाव में हैं और विषय के कारण भी इस पुस्तक पर स्वामी दयानंद के विचारों की स्पष्ट छाप है। गोकुलजी की मौलिकता पूरी तरह उभर कर प्रभावशाली शक्ल में नहीं दिखती। लेकिन व्यावहारिक आधार पर नैतिक प्रतिमान से समाज का आकलन करना–गोकुलजी की विचार–प्रक्रिया को महत्त्वपूर्ण बनाता है। इसमें समाज के तमाम मौजूदा स्वरुप को उन्होंने समेटा है। दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक और वैचारिक मामलों में वे सूक्ष्मता की हद तक जाते हैं और विषय के किसी पक्ष को अंदरूनी स्तर तक बारीकी में जाकर उकेरते हैं। प्रथम खंड में मंडल दो को लें–जिसमें उन्होंने अंतरात्मा पर विचार किया है। यह देखकर आश्चर्य होता है कि सामाजिक जीवन के कोनों–अँतरों तक उनकी पहुँच थी। वे एक–एक बात पर पूरी गंभीरता और गहराई से विचार करते थे। एक अंश है 'छूतछात भाव भी अंतरात्मा की शिक्षा के अनुकूल तो ठीक ही है पर हमारी दुर्बुद्धि कहीं यथार्थ से अधिक कहीं कम अवस्था को पहुँचा देती है। सब ही मल के छूने से घृणा करते हैं–भंगी भी पंजे से मल उठाता है– हाथ से नहीं। कोई अनुचित रीति से बढ़ाकर भंगी की छाया में छूत देखता है कोई इससे नीचे गिरकर हाथ से भी मल छूने में घृणा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नहीं करता। यह मन का विकार है-- अंतरात्मा तो समान ही घृणित को घृणित बतलाती है।' आगे लिखते हैं- 'हमने कभी कहार के हाथ की रोटी खानेवालों को मरते नहीं देखा, न आठ-आठ बार चौका देने वालों को इस कारण दीर्घायु होते ही देखा।'

अंतरात्मा पर विचार करते हुए वे न तो अतीन्द्रियता में जाते हैं न ही कोई दार्शनिक कुहेलिका रचते हैं। सत्यासत्य के विवेक की बात करते हुए उन्होंने 'प्राकृतिक धर्म' की बात की है। फिर उसके विस्तार में जाते हुए वे अंतरात्मा की विवेक प्रणाली की पड़ताल करते हैं। जहाँ जरूरत पड़ती है, पौराणिक या ऐतिहासिक प्रसंगों से भी वे परहेज नहीं करते। उन्हें हर हालत में सरल भाषा में, सहज तरीके से अपनी बात समझानी है। लेकिन गोकुलजी कभी, किसी भी स्थिति में-अनुभव, तर्क, और विवेक का धरातल नहीं छोड़ते। उनकी दूसरी खूबी यह लगती है कि वे व्यावहारिक पक्ष को उसी संगति में रखकर विचार करते हैं। जैसे-नैतिक आचरण और सोच के प्रसंग में उन्होंने कुछ विचारणीय नियम, क्रम से दर्ज किये हैं। कार्य करने के पूर्व या बाद में हमें क्या आचरण बरतना चाहिए? इसे वे व्यावहारिक धरातल पर रखकर विस्तार से विचार करते हैं। यह बात सही है कि गोकुलजी का नैतिक-दर्शन सात्त्विक आधार पर टिका है और वहाँ वे बहुत दृढ़ हैं। यहाँ सवाल प्रगतिशीलता या आधुनिकता के आधार पर राय कायम करने का नहीं है, मूल बात 'लोकमंगल' की भावना है। समाज में सच्ची समानता की स्थापना का भाव है- मनुष्य का शोषण न हो, मनुष्य दुखी न हो। मनुष्य और समाज कैसे सुखी हो? उसकी उन्नति हो -- इसके लिए व्यावहारिक स्तर पर वे सोच और आचरण का विकल्प बताने की कोशिश करते हैं। यह बात महत्त्वपूर्ण है। ईसाई धर्म और बाइबिल के प्रति उनके भीतर जो आलोचनात्मक भाव है-उसका आधार उन्होंने स्पष्ट कर दिया है- "धर्म वही सराहा जाता है कि जिसका प्रभाव उसके मतावलम्बियों पर समुचित पड़ता है। वह कैसी भंग कि जिसका नशा पीने वालों को हो ही नहीं? हम देखते हैं कि ईसाई शिक्षा के अधिगत सृष्टि में कितना पक्षपात, रक्तपात, मारधाड़, छीनखसोट फैला है जो परमात्मा ने शीघ्र इस रोग का प्रतिकार न किया तो और फैलेगा।" तत्कालीन ब्रिटिश में ईसाई समाज पर की गई यह टिप्पणी उनके मानसिक गठन का अंदाज कराती है। उनके अनुभव, अध्ययन और आचरण में इतनी सच्चाई थी कि उसकी दवँक से विचारों का खरापन निखर आता था। आगे चलकर पूरे धर्म के प्रति उनके विचार विस्फोटक शक्ल में सामने आते हैं, उनकी भाषा में जो कबीर वाली तीखी व्यंग्यात्मकता मिलती है-उसके कुछ संकेत इसमें भी मौजूद हैं। "हम देखते हैं कि किरानी, कुरानी और पुरानी स्वर्ग की कुंजी का अपने ही हाथों में होना विश्वास करते हैं। मुहम्मदी या ईसाई होने ही से मनुष्य मुक्ति पावेगा चाहे कैसा ही पाप क्यों न करे? चाहे कुछ भी कर डालो पर गंगा नहाकर पुरोहिती मंडली को दान दो, तुम्हारे पाप क्षमा हो जाएँगे। यह सब ऐसे भाव हैं कि जिनके कारण अनेक मतों में पापियों की संख्या असंख्य हो गई है और दिनों दिन पाप बढ़ता ही जाता है।"

मूल बात यह कि वे नैतिक विचारों को आचरण के आधार पर तय करेंगे।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पाखंड, अंधविश्वास और रूढ़ियों को बिना विचार किये मानते चले जाने के वे सख्त विरोधी हैं। मानवी–सुख की वे विस्तार से चर्चा करते हुए नैतिकता के सवाल को पाप–पुण्य के कठोर धार्मिक अनुशासन में नहीं बाँधते। वे काम, इच्छा, भोग या संयोग की व्यावहारिकता और अनिवार्यता की ताकीद करते हैं, लेकिन अतिरेक से मना करते हुए, संतुलन और व्यक्ति–समाज के शील का ख्याल रखने की भी वकालत करते हैं। अगर कोई उपनिषद् इच्छा को दुःख का कारण बताता है तो गोकुलजी इससे सहमत नहीं होते, न ही वे इसके विपरीत इच्छाओं की तृप्ति को ही सुख का कारण बताते हैं। उनके अनुसार 'सच जो यह है कि इच्छाओं की सुख साधक होने की सीमा, तक ही तृप्ति और उनको बढ़ने देने से रोकना ही हमारे सच्चे सुख का हेतु हो सकता है।'

इसीलिए वे चेतना पर भी 'आत्म–स्नेह' शीर्षक से विचार करते हैं। अगर अंतरात्मा में त्रुटि है तो ज्ञान के अतिरिक्त प्रकाश की जरूरत है जिसके आलोक में अंतरात्मा का परिष्कार हो सके। इसके लिए हम क्या उपाय करें, कैसी व्यवस्था लाये? उनके अनुसार इस पर विचार होना चाहिए।

दूसरा अध्याय जिसे वे 'पाद' कहते हैं– उसका प्रारंभ भट्ट जी (संभवतः बालकृष्ण भट्ट) की एक राष्ट्रीय भाव वाली कविता 'मातृ–उपासना' से करते हैं। उनके विचार का आधार शुरू होता है 'प्राकृतिक धर्म' से। इसी विस्तार में वे अपराध और दंड पर विचार करते है। इसमें कैसे हम अपने कर्त्तव्य का निर्धारण और पालन करें। ईश्वर को 'प्राकृतिक–शक्ति' का ही पर्याय बताते हैं। उनकी आस्तिकता का यह स्वरुप तर्क और विश्वास के आधार पर विवेकपूर्ण ढंग से बना है। साथ ही नैतिक आधार पर वे हिन्दू–धर्म और भारतीय इतिहास को इस्लाम और ईसाई से बेहतर भी ठहराते हैं, क्योंकि उनके अनुसार इसके ऐतिहासिक प्रमाण हैं–"मानवी इतिहास बतलाता है कि योरोपादि देशों के मनुष्य बहुत ही पतित थे और अब तक नैतिक अधःपतन उनमें जितना है जगत् में होना असंभव है।"

धन और ताकत से विकसित जातियाँ या राष्ट्र साम्राज्यवादी चरित्र अख्तियार करते हैं और विजेता बनते है, लेकिन समय के साथ ऐसे शासकों का नाश होता है। 'प्राकृतिक–धर्म' पर विचार करते हुए वे एकपक्षीय नहीं होते, बल्कि उसकी सीमाओं का भी आकलन करते हैं। फिर कैसे इसकी कमी पूरी की जा सकती है–इस पर विचार करते हैं। निःसंदेह वैदिक या आर्यसमाजी निष्कर्षों तक वे तार्किक पद्धति से पहुँचते हैं। उनके अनुसार यह मानव मात्र के कल्याण का धर्मों–जिसमें अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष चार क्रम हैं। वे काफी विस्तार में जाकर वेद, उपनिषद्, ब्राह्मण–ग्रंथों, बौद्ध, जैन के अलावे विभिन्न सूत्रों की कही बातों की सत्यता पर विचार करते हैं। लेकिन वे इन्हें आँख मूँदकर स्वीकार करने की बात नहीं करते क्योंकि उनके अनुसार 'ऐतिहासिक बातें या आख्यान केवल हमारी शिक्षा के निमित्त हैं, उनमें से हम सबके करने या न करने को बाध्य नहीं। हमें देखना होगा कि अमुक किस नैतिक दायित्व का पुष्टिकारक है– उसी दायित्व पर हम ध्यान देंगे।' लेकिन ईसाई और मुस्लिम धर्म के ग्रंथों में दिये

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कतिपय प्रसंगों और विचारों की विडंबना भी–वे रेखांकित करते हैं। ईश्वर के प्रति आस्था के बावजूद ईश्वर और जीव के रिश्ते को वे मौजूदा समाज के समानान्तर रखकर विचार करते हैं। उनमें कहीं भी ईश्वर की सत्ता के प्रति संदेह नहीं दिखता। वे उपासना और प्रार्थना-पद्धति को भी स्वीकार करते हैं। अंत में वैदिक धर्म की वरेण्यता को प्रतिष्ठित करने की जोरदार कोशिश से पहला खंड समाप्त होता है। इसमें ईश्वर और धर्म के प्रति आस्था की परत स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

'नीति–दर्शन' के दूसरे खंड की 1000 प्रतियाँ रामनवमी 1913 ई० में छपती हैं। इसे वे 'भारत में प्राणप्रिय नवयुवकों' को समर्पित करते हैं–इस आशा के साथ कि जिस विश्वास से समर्पण किया गया है उसी भाव से वे इसे स्वीकार करेंगे। इसकी भूमिका में यह बतलाया गया है कि इसे 1910 ई० में ही पूरा कर लिया गया था और तब किसी सेठ दामोदर दास ने पहले खंड का खर्च वहन किया था। उक्त खंड पर ऐसी सम्मतियाँ आयीं कि उससे उत्साहित होकर हिन्दी–प्रेमी कालीचरण मित्र ने इस खंड के प्रकाशन में सहायता दी है। पहले खंड में सैद्धांतिक, दार्शनिक बातें थीं लेकिन इस खंड में दैनिक जीवन की व्यावहारिक बातें हैं।

यह बात गोकुलजी ने पहले ही खंड में स्पष्ट कर दी थी कि हिन्दी में 'नीति–शास्त्र' संबंधी कोई क्रमवार ग्रंथ न था लेकिन "मेरा यह पक्का मत है कि कोई भी पुस्तक क्यों न हो जो पाठकों के मनों में जागृति, हृदयों पर स्थाई अंकन और नसों में करारापन न पैदा करें– सर्वथा निकम्मी है। फिर जब नीति और सहज चैतन्यता के अभाव से ही भारत का अधःपतन निर्विवाद सिद्ध हो चुका है, तो उसके बच्चों के पढ़ने के लिए किसी नीतिशास्त्रीय पुस्तक में इस गुण का न होना कितना बुरा न समझा जायगा। इसी परिणाम पर विचार रखकर यह ग्रंथ लिखा गया है और बाहरी बनावट व शब्द-रचना पर इतना ध्यान नहीं दिया गया है।"

पुस्तक ऐसी हो जो मन को जाग्रत् करे, हृदय पर अमिट चिह्न अंकित करे और जोश पैदा करे, अन्यथा वह व्यर्थ है। विचार व्यवस्था और सहज जागरूकता के अभाव में ही भारत पतन के गर्त में चला गया, ऐसे में ऐसी पुस्तकें ही न हों, यह वाकई शोचनीय बात है। गोकुलजी ने यही सब सोचकर इसे लिखा और अपना ध्यान मूल आशय पर बनाये रखा। भाषा का वाह्याडंबर या गद्य--शैली की उन्होंने कोई चिंता नहीं की। इससे गोकुलजी के अंदरूनी मानस की बनावट का अंदाज होता है। इस बार मगलाचरण में उन्होंने अपनी ही एक मौलिक कविता दी है, जिसमें देश–प्रेम का ठेठपन साफ झलकता है।

हमें जन्म के साथ ही समाज में जो रिश्ते हासिल होते हैं–उसकी स्वाभाविक परिणति है कि मनुष्यों में आपसी प्रेम हो। 'मनुष्य का पारस्परिक संबंध एक अनिवार्य समता-संबंध है, यह समता-स्थिति-समता नहीं, किन्तु स्वत्व समता है।' समाज में बराबरी का प्राकृतिक यथार्थ ही तर्कसगत है इसलिए असमानता की नीति गलत और अप्राकृतिक होगी। लेकिन समानता के सिद्धात इतने आसान नहीं हैं–मनुष्यों के बीच

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जबर्दस्त प्रकृतिगत विभिन्नता होती है। इस पर विचार करते हुए गोकुलजी इस नीति पर पहुँचते हैं कि 'अपने बल से विद्या से या और किसी योग्यता से चाहे शारीरिक हो या मानसिक, प्रत्येक व्यक्ति को सुख–भोगने का एक समान स्वत्व है पर दूसरे के सुख में बाधक होने का कोई अधिकार नहीं हैं।'

बिना किसी को नुकसान पहुँचाये अपना हित साधन करना ही सही नीति है। जाहिर है इसको व्यवहार में घटित करने के क्रम में भिन्न स्थितियों से साबका पड़ेगा--इस सब पर गोकुलजी ने विस्तार से विचार किया है और 'मनुष्यों' के बीच प्रेम को स्थापित करने वाली नीतियाँ तय करने की कोशिश की है। एक मनुष्य को दूसरे से कैसा व्यवहार करना चाहिए--इस विवेक को विकसित करने वाली नीतियों पर गोकुलजी ने विचार किया है। इसमें 'महाभारत' से आर्य नियमों का हवाला दे–उसका विश्लेषण किया है। धर्म का सत्त्व जब तक आचरण में नहीं उतरता तब तक उसकी कोई अहमियत नहीं। मनुष्य का क्या धर्म होना चाहिए? लिखते हैं– 'धर्म मनुष्य का वह है जो सार्वभौमिक और सर्वहितकारक हो, नहीं तो वह ईश्वरीय धर्म नहीं हो सकता। हमको बहुत ही कोमलता के साथ दूसरों के स्वत्वों की रक्षा करनी चाहिए। स्वार्थी जीवन ही पशु जीवन है।'

दूसरों के स्वत्व की रक्षा के प्रति गहरी संवेदनशीलता और निःस्वार्थ जीवन के बिना धर्म का कोई मतलब नहीं। धर्म के नाम पर होने वाले अत्याचारों के प्रति उनका तीखा रोष है– 'क्या एक आदमी को मारना पाप है पर भाड़े के हत्यारों को साथ लेकर अगणित ईश्वर के दासों का राक्तपात महान् पाप नहीं है?'

अगले अध्याय में उन्होंने 'न्याय और सत्य' पर विचार किया है। अगर कोई किसी के सत्त्व को प्रतिष्ठा दे तो न्याय और उसे भंग करे तो अन्याय होगा। वे बुनियादी स्तर से बात शुरू करते हैं। व्यक्ति जन्मजात स्वतंत्र तो है मगर समाज में उसकी स्वतंत्रता का अर्थ और स्वरूप दोनों बदल जायेगा। लेकिन समाज में मनुष्य के स्वत्व की बड़ी दयनीय स्थिति है। 'जब एक व्यक्ति का दूसरे को सताना पाप है तो एक वर्ग, वर्ण या जाति का भी दूसरे वर्ग, वर्ण या जाति को सताना वैसा ही पाप है।' उन्हें समाज के यथार्थ की पूरी समझ थी।

सामाजिक स्तर पर हो रहे अत्याचारों, असमानता और शोषण के विरूद्ध उनके भीतर विद्रोह भाव था--जिसके पीछे यही समझ थी। इस बात को वे भारत की जनता पर अंग्रेजी जाति के शोषण और शासन तक ले जाते हैं। समाज में जातिगत शोषण पर भी उनकी नजर थी। मसलन साम्राज्यवादी और सामंती दोनों कुप्रवृत्तियों के प्रतिकार में वे सजग थे। हम अपने देश, भूमि, घर पर दूसरे का अधिकार धींगाधींगी नहीं चाहते तो हमें दूसरे के देश, भूमि, घर पर भी अधिकार करने का कोई स्वत्व नहीं है।' गोकुलजी का मानना है कि ऐसा करना प्राकृतिक धर्म के विरूद्ध है। अगर ऐसा हो रहा है तो इसी से अराजकता और अशांति है। ऐसे में बराबरी के सिद्धांत को अनिवार्य रूप से स्वीकार करना चाहिए क्योंकि, जहाँ भी स्वतंत्रता का हनन होता है वहाँ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आजादी की लड़ाई तब तक चलती है, जब तक स्वतंत्रता हासिल नहीं हो जाती। ऐसे में सवाल यह है कि कोई ऐसा करे ही क्यों? उन्होंने व्यक्ति की स्वतंत्रता को सामाजिक संदर्भ में रखकर विचार किया है।

दूसरे मंडल (अध्याय) में उन्होंने 'स्वतंत्रता हनन' पर विचार किया है। स्वामी और दास के रिश्ते को लेकर तब जो सिद्धांत प्रचलित थे, उसके अनुसार कोई स्वामी और दास को वश में रखकर उसका लाभ उठा सकता है। लेकिन गोकुलजी इसका तार्किक प्रतिकार करते हैं—'स्वामी का कोई प्राकृतिक स्वत्व ऐसा नहीं है, न दास का कोई ऐसा दायित्व है कि जिससे वह बिचारा इस बुरे बर्त्ताव से दबा हुआ अपनी ईश्वर प्रदत्त स्वतंत्रता को खोकर गुलामीगिरी ही करता रहे।' किस तरह साम्राज्यवादी और सामंती व्यवस्था में धार्मिक अंधविश्वास कायम हुए--इस पर आगे वे तीखी चोट करते हैं। यहाँ भी वे इस प्रथा को 'घृणित और अप्राकृतिक' कहने से नहीं चूकते। दरअसल मनुष्य का शोषण उन्हें सह्य ही नहीं था। वे इस समय तक आस्तिक जरूर हैं, लेकिन उनका विश्वास यह है कि ईश्वर ने सभी को समान अधिकार, समान स्वतंत्रता दी है--सुख पर किसी एक के ही अधिकार की बात बेतुकी है। वे पाश्चात्य जगत्, ईसाई और मुसलमान धर्म की इस बात के लिए आलोचना करते हैं कि वहाँ दास--प्रथा रही है। वे इस पर विस्तार से चर्चा करते हैं। किसी स्त्री की इच्छा के विपरीत ताकत या धन से उसकी मर्यादा छीनने का अधिकार आखिर कैसे उचित है? यह प्रथा आदमी को जड़ बना देती है।

'गुलामी की प्रथा स्वामी और सेवक--दोनों की बुद्धि में जड़ता पैदा करके दोनों का आध्यात्मिक जीवन नाश कर डालती है। इससे देश के धन और नीति—दोनों पर बड़ा आघात पहुँचता है।' वे विस्तार से बताते हैं कि प्रतिक्रिया में उनकी प्रवृत्ति कितनी हिंसक हो जाती है। स्वामी की विकृतियाँ उसमें भी पनप जाती हैं। इससे समाज का पतन होता है—जिसका असर देश पर पडता है। वे पूछते हैं कि क्या किसी धर्मशास्त्र में ऐसा है कि मनुष्य के श्रम का शोषण हो और उसे मुँह तक खोलने का हक न दिया जाय? दूसरी बात यह कि क्या स्वामी स्वयं दास की स्थिति में रहना स्वीकार करेगा? उनके विचार से तो धर्म मनुष्य में प्रेम और भाईचारा का ही संदेश देता हैं आदर्श स्थिति यह है कि मनुष्य अपनी योग्यता और प्रयत्नों से सुख प्राप्त करने का पूरा अधिकारी है। लेकिन इस सख्त हिदायत के साथ कि उसका ऐसा करना किसी के सुख में बाधक न बने। समानता हर हालत में होनी ही चाहिए। अन्यथा--

'जब इस सिद्धांत के विरूद्ध किसी व्यक्ति को समाज दबाता है, तो उसके स्वत्व को तोड़ता है उसके मौलिक स्वतंत्रता में बाधक होता है। प्राण, स्वतंत्रता और सुख साधनों की रक्षा के ही निमित्त शासन प्रथा का प्रादुर्भाव मनुष्यों में हुआ है। जब कभी यह अभीष्ट सिद्ध न होते हों तो मनुष्य को अधिकार है कि शासन को उलट दे, बदल दे या और किसी तरह सुधार करे। और शासन की नवीन नींव ठोस धरती पर धरकर ऐसा संगठन बनावे जिसके अधिगत उनके सुख -स्वतंत्रता की रक्षा यथेष्ट होती

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हो।' जन्म से मनुष्य को अपनी स्वतंत्रता, प्राण और जीने के साधनों की रक्षा का स्थायी अधिकार है। समाज, शासन या सरकार–अगर ऐसा नहीं कर पाती तो उसे उलट कर नई शासन-व्यवस्था की नींव रखनी चाहिए। आमूलचूल बदल देने का यह सिद्धांत नवजागरण का सशक्त स्वर है। गोकुलजी आगे क्रम से गिनाते हैं कि किन–किन तरीकों से समाज, व्यक्ति के स्वत्व को छीनता है। इसमें उन्होंने सरकार, कर्मचारी, जमींदार और अमीर लोगों के अत्याचारों का उल्लेख किया है। वे क्रम–उपक्रमों में जाकर समाज की अंदरूनी और बाह्य–तमाम मौजूदा यथार्थ को बारीकी से परखते हैं। समाज के यथार्थ का विश्लेषण और उसकी समझ के बिना नीति निर्दिष्ट करना संभव भी नहीं था। इस दृष्टि से भी यह पुस्तक विचारणीय है। उनके विचारों में प्रगतिशील और आधुनिक दृष्टि की आश्चर्यजनक दीप्ति है। अभिव्यक्ति और बौद्धिक स्वतंत्रता के हनन पर उनकी राय है–'जहाँ बलात् तर्क–वितर्क रोका जाता है वहाँ मिथ्या के जड़ पकड़ जाने की अधिक संभावना होती है।' यह अकारण नहीं था कि गोकुलजी ने अपने लिए जो छद्मनाम तय किये थे–'उसमें एक 'सत्यवीर' भी था, एक 'प्रत्यक्षवादी'! सत्य के प्रति वैचारिक दृढ़ता जब व्यवहार तक उतर आती है तब विचार भी सिर्फ 'शब्द और वाक्य' भर नहीं रह जाते। इसलिए विचार की ताकत विचारक के व्यक्तित्व पर भी दूर तक निर्भर करती है। इस दृष्टि से गोकुलजी के व्यक्तित्व को देखते हुए उनके विचारों की अहमियत और बढ़ जाती है।

रूढ़ियाँ और अंधविश्वास किस तरह रिवाज बन जाते हैं और झूठ, सत्य की तरह स्थापित हो जाता है, इसे सरल तरीके से समझाने की जैसी शैली गोकुलजी की है–वह सही अर्थों में जनवादी है। ताकतवर के विरूद्ध उनका स्वर प्रारंभ से ही जेहादी रहा है क्योंकि, 'बलिष्ठ का लट्ठ–प्रयोग तक विहीनताजन्य अत्याचार मात्र है।' ये लट्ठ मारने वाले कौन हैं–राजकर्मचारी, अमीर और जमींदार ! वे एक व्यक्ति के शासन को जिसे 'एकमुखी शासन' कहते हैं–इसे एकदम अप्राकृतिक मानते हैं। उनके विचार में राज है क्या ? 'राज, समाज रचित एक गोष्ठी है।' इसलिए इसमें सभी की भागीदारी जरूरी है। 'एक व्यक्तिक शासन--मानवी स्वभाव के प्रतिकूल है।' नवजागरण पर पिछड़ेपन और सांप्रदायिक संकीर्णता के आरोप लगाये जाते हैं, ऐसे लोगों को रचनात्मक संस्कार पैदा करने की कोशिश करने वाली इस पुस्तक को ध्यान से पढ़ना चाहिए। गोकुलजी ने पराधीन समाज को, सोये हुए लोगों को–जगाने में जीवन लगा दिया तो उनके आकलन में थोड़ी विनम्रता अवश्य रखनी चाहिए। 'प्रजा को संताप देने से अनेक राज नष्ट हो चुके हैं तो अब भी जो समाज प्रजा के परिताप का कारण होगा या है–शीघ्र ही नष्ट होगा–यह बात निर्विवाद है।' अत्याचार और शोषण करने वाले राज का विनाश निश्चित है। यही इतिहास रहा है और यही प्राकृतिक सत्य है। यहाँ क्या स्पष्ट संकेत नहीं है कि इसमें मौजूदा ब्रिटिश सरकार अपवाद में नहीं है?

यही सही है कि गोकुलजी ने समाज और व्यक्ति के रग–रेशे तक को उकेर कर इस बात की पड़ताल की है। लेकिन तब उन पर आर्यसमाज का इतना गहरा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

असर था कि यहाँ उनकी तेजस्विता उसी धारा का प्रतिनिधित्व करती है। इस पुस्तक में उनकी सीमाएँ स्पष्ट दीख जाती हैं। धर्म की परिधि से बाहर जाने पर उनके विचारों में जो प्रचंड विस्फोट होता है, वह अंतिम काल के लेखों में ही है–इसमें नहीं। फिर उन्होंने स्वत्व के प्रसग में समाज और संपत्ति पर विचार किया है। जाहिर था, वे 'देश का धन' नामक अर्थशास्त्र की पुस्तक लिख चुके थे। उन्हीं विचारों के कई सूत्रों का यहाँ विस्तार किया गया है। स्वत्व हनन करने वाला समाज किस तरह अपनी संपन्नता और शांति खो देता है–इस पर उन्होंने विस्तार से विचार किया है। वे संपत्ति पर अधिकार को तभी मानेंगे जब वह समाज से अनुमोदित हो। तब संपत्ति वाले का कर्त्तव्य और दायित्व भी समाज ही तय करेगा और उसे उस पर खरा उतरना होगा। अगर ऐसा नहीं हुआ तो फिर प्रतिरोध शुरू होगा। उनके विचार का विषय यह है कि धन के व्यवहार में क्या नीति अपनायी जाय। यहाँ तक पहुँचने के वैचारिक प्रयत्नों को देखकर गोकुलजी का कायल होना पड़ता है।

वे समाज के महत्त्व की श्रेष्ठता बताते हुए लिखते हैं–'संसार में समाज से बड़ी कोई शक्ति नहीं है। यदि समाज अन्याय भी करे तो उसके विरुद्ध चीत्कार सिवा ईश्वर के कोई नहीं जिसके पास ले जाई जाय।' लेकिन इस बात पर विचार करते हुए वे समाज की भी विस्तार से पड़ताल करते हैं। कोई विचार, नीति या निष्कर्ष वे मनोगत तरीके से नहीं रखते–उसे समाज में प्रत्यक्ष रूप से अनुभव सिद्ध होने पर ही मानते हैं। वे किसी नीति या निष्कर्ष पर हठात् नहीं पहुँच जाते। उसे व्यावहारिक प्रयोगशाला में परख कर प्रसंग विश्लेषण के साथ विचार करते हैं। वे कहीं भी तर्क और बौद्धिकता की डोर ढीली नहीं पड़ने देते।

आगे के कुछ अध्यायों में नैतिक शिक्षा पर विस्तार से विचार किया गया है। लेकिन तारीफ करने वाली बात यह है कि यहाँ भी वे मनुष्य और समाज के यथार्थ की अनदेखी नहीं करते। मनुष्य की गरिमा और न्याय पर वे कोई समझौता नहीं चाहते। वे समाज के इतिहास से गहरे परिचित थे और जानते थे कि हमारे कई रिवाज इतिहास के झूठ हैं। समाज में कहाँ, कैसे और किन स्तरों पर बदलाव जरूरी है–इस पर वे लगातार बहुविध सोचते–विचारते रहे। आज कई झूठ, सत्य समझे जा रहे हैं क्योंकि, 'जो इतिहास लेखक इतिहास को अपने मनमाने रंग देकर लिखता है वह सदा–सर्वदा को जगत् में झूठ फैलाने वाला होता है। अतः वह दुष्ट, निंदनीय, झूठों का राजा है।' वे यहाँ तक कहते हैं कि मौखिक से लिखित अपराध ज्यादा घातक है– जिससे समाज को लंबे समय तक झूठ ढोना पड़ता है। वे केवल प्रमाण सिद्ध बातों को ही स्वीकार करने पर बल देते हैं।

अगले 'पाद' (भाग) की शुरूआत वे छप्पै से करते हैं। उनके छप्पैं की आखिरी दो पंक्तियाँ इस प्रकार हैं–

''जो रक्षक पति लाज के, अरु देश प्रेम मकरंद।
सो भारत रस भींजिये, गोपालक आरज वृंद।।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इसमें विचार विषय है – 'मनुष्यों के प्रति मनुष्य कर्त्तव्य।' भूत और वर्त्तमान की क्या सच्चाई है! बेशक इसमें एक किस्म की अकादमिक ऊब भी है और धार्मिक गाढ़ापन भी। आर्यसमाज के सिद्धांत पक्षों को सिद्ध करने अथवा अपने विचारों को उसी ओर ले जाने का प्रमाण तो स्पष्ट दिखाई पड़ता है। इसमें संदेह नहीं, उनकी मेधा और बौद्धिक क्षमता उच्च कोटि की है। उनमें मनुष्य के प्रति जबर्दस्त पक्षधरता है। वे 'भविष्य की सच्चाई' पर बात करते हैं। जाहिर है उनकी निर्दोष आकांक्षा हमें गहरे प्रभावित करती है।

मनुष्य की पक्षधरता में उसकी आजादी, गरिमा और शोषण-मुक्ति की बात तो है ही, सबसे बड़ी बात स्त्री–पुरुष समानता की है। स्त्रियों की स्वाधीनता–नवजागरण का एक सबल पक्ष था और इस आसंग में राधाचरण गोस्वामी और राधामोहन गोकुल का विमर्श अप्रतिम है। गोकुलजी ने स्त्री–विषयक काफी लेखन किया है–जिसकी पूर्व-पीठिका यहाँ दिखाई देती है। स्त्री–पुरुष के बीच असमानता का भाव कितना रूढ़ है, इस पर गोकुलजी के विचार अत्यन्त तीखे हैं। उन्हें इस बात पर भारी रोष है कि व्यभिचार में पड़ी किसी स्त्री के प्रति पुरुष बहुत ही घृणित राय व्यक्त करते हैं। लेकिन 'पुरुष विष्ठा खाते फिरें पर फिर भी समाज उन्हें अपने साथ रहने, बैठने, खाने, पीने देता है, तिरस्कार–बहिष्कार नहीं करता, यह बेईमानी नहीं तो क्या है ?' वे पुरुष समाज से पूछते हैं कि ऐसी स्थिति में जब फिरंगी भारतीयों और गैरभारतीयों से अलग-अलग व्यवहार करते हैं तो किस मुँह से हम उन्हें दोष दें? जो स्वयं न्याय नहीं बरतता और स्त्री के प्रति अन्याय करता है, क्यों न इसे ईश्वरीय दण्ड-विधान माना जाय? उनके अनुसार समाज और व्यक्ति दोनों का यह अनिवार्य कर्त्तव्य है कि वे सच्चा बर्त्ताव करें। 'किसी जाति को दूसरी जाति के स्वत्व तोड़ने-छीनने का अधिकार नहीं है। फिर वे समाज की सबसे जटिल समस्या पर आते हैं और दलितों के सवाल को उठाते हैं। मसलन स्त्रियों पर अत्याचार के कारण ही हम गुलाम हैं। 'उस न्यायकारी परमात्मा के जन्म, मृत्यु, खानपान, हाथ, पैर आदि सब समान बनाकर कभी यह नहीं चाहा कि सिवा अपनी भूल के कभी कोई प्राणी दूसरे के अत्याचारों से दलित हो।' उनका मानना है कि ऐसा इसलिए संभव हो पाता है कि 'जो दलित होता है उसकी भी भूल कायरता और निर्दयता व दुष्टता है।' मुझे नहीं मालूम नवजागरण में इसके पहले भी किसी हिन्दी रचनाकार ने दलितों का सवाल–इस तरह बुनियादी स्तर पर उठाया हो। प्रकृति ने सभी को समान बनाकर भेजा है, ऐसे में आदमी खुद भले गलती करे। लेकिन किसी दूसरे को यह हक नहीं कि उसे अपने अत्याचारों से दलित करे। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि दलितों को भी अपनी कमजोरी और कायरता छोड़कर इस अत्याचार का सशक्त प्रतिकार करना चाहिए। ऐसा करने वाले निर्मम और दुष्ट तो हैं ही। उनको कड़े प्रतिरोध से रोका जाना चाहिए।

उन्होंने अगले 'मंडल' में 'कामसंयम' पर विचार किया है। इसमें उन्होंने स्त्री–पुरुष रिश्ते में बरती जाने वाली नीति पर गंभीरता से विचार किया है। ब्रह्मचर्य और व्यभिचार के मामले में स्त्री–पुरुष दोनों को समान अधिकार मिले। अगर पुरूष परगमन चाहता है तो उसे भी यह नीति अपनी स्त्री को सौंपना चाहिए। आधुनिकतावादी आखिर इससे आगे कहाँ जायेंगे? आज से लगभग 92 वर्ष पूर्व ऐसे विचार किसी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नवजागरण हिन्दी लेखक के थे--इस बात को अंगेजीजीवी बुद्धिजीवियों को समझनी चाहिए। हिन्दी नवजागरण की वैचारिक आँच के समीप जाने से गरुर की बर्फ पिघल जाती है। इतना तय है!

पुरुष किसी तरह इस प्रसंग में स्त्री को दासी या वेश्या बनाकर अत्याचार करता है -- इन तमाम पक्षों पर उनका ध्यान जाता है। स्त्री–पुरुष के 'काम' के प्रसंग में किस तरह संयम और सावधानी बरतनी चाहिए – इसी नीति--दर्शन पर वे विचार करते हैं। विधवा–विवाह के प्रसंग में उनकी नीति यह है कि--मरने के बाद विवाह करने, न करने में कोई विधि-निषेध नहीं है स्त्री हो वा पुरुष।' समाज में स्त्री के विभिन्न पहलुओं पर उनके सोचने का तरीका रूढ़ नहीं था। वे वैज्ञानिक तरीके से व्यावहारिक स्तर पर विचार करते थे। इसकी कैसी उचित और न्यायसंगत व्यवस्था हो–इस पर वे विस्तार में जाते हैं। विवाह–संस्था पर भी उनके विचार महत्त्वपूर्ण हैं। न्याय, विश्वास और प्रेम की नींव पर ही गृहस्थ जीवन मजबूती से खड़ा हो सकता है। पति और पिता का दायित्व समाज के हित से अभिन्न रूप में जुड़ा है। पुरुष का एक और रुप है–संतति का। इस संतति का कैसा संस्कार होना चाहिए और वे संस्कार कैसे बनेंगे--इसके लिए हमारी सोच क्या हो, हमारी नीति क्या हो? इस तरह सामाजिक संविधान पर समग्रता में विचार करना आसान नहीं है। गोकुलजी ने इन प्रश्नों पर विस्तार से विचार किया है।

उनके तीसरे मंडल का शीर्षक है 'समाज' ! ऊपर आप्त वाक्य है–'मनुष्य सभ्य समाजी हैं।' मनुष्य और उसकी आत्मिक श्रेष्ठता पर उन्हें पूरा विश्वास था। वे मनुष्य को अन्याय-मुक्त कर एक सुसभ्य और सुसंस्कृत समाज बनाने के प्रबल आकांक्षी थे। कैसे बनेगा यह समाज? इसके लिए आचरण के स्तर पर कैसी नीति अपनायी जानी चाहिए – यह सब उनकी विचार-परिधि में शामिल है। इसमें उन्होंने व्यावहारिक यथार्थ की समझ का सतत ध्यान रखा है और तत्कालीन समाज की पूरी व्यवस्था को विश्लेषित करने की कोशिश की है। राजकर्मचारी पर तो उनका एक अलग अध्याय ही है।

गोकुलजी इस मामले में अत्यन्त दृढ़ थे कि शासन का प्राकृतिक अधिकार किसी को नहीं है– यह बात शासक और शासित दोनों को समझनी चाहिए। लेकिन तत्कालीन स्थिति तो अत्यन्त भयावह थी। लंबा होने के बावजूद इस अध्याय के अंतिम अंश को देने का लोभ संवरित नहीं कर पा रहा --'सृष्टि के आदि में जब प्रथम अमैथुनी सृष्टि हुई तब 'बपौती का राज' लेकर कौन उतरा था ? किसके मुँह में सोने के चम्मच थे ? सभी तो समान दशा में थे केवल योग्यतानुसार उनको मनुष्यों ने उच्च पदस्थ होने को चुना व माना। आजकल भी बदमाश लोग उच्च होने व अमीरी व हुकूमत का झूठा बड़प्पन लादे फिरते हैं किन्तु गरीब, निर्बल कभी भी नीच नहीं कहा जा सकता, मानवी सृष्टि सर्वथा समान है। अमीरों से गरीब अधिक धार्मिक व सत्यवादी होते हैं, गरीबों का अनुचित रक्तपान करके ही मोटे–मोटे दुष्ट लोग अमीरी झलकाते हैं। देश रक्षा, राज्य-रक्षा, धर्म-रक्षा, अन्न उपार्जनादि सभी कामों में उन्हीं का पसीना उन्हीं का रक्त खपता है, जिन्हें दुर्बुद्ध लोग नीच कहते हैं और आप हरामखोर आलसी बेईमान होते

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हुए भी उच्च व अमीर बनते हैं। ऊँचे और नीचे का भेद, मिथ्या व कल्पित और अन्याय के आधार पर, हम सर्वत्र फैला देखते हैं।'

हिन्दी नवजागरण के इस गद्यांश में मूल ताकत समय और समाज की सच्चाई ही है। इसमें एक स्वर गरीबों के रक्तपान करने वाले हरामखोर, विलासी, बेईमान और मोटे दुष्टों के प्रति रोष भरा है तो दूसरा स्वर उन गरीबों के लिए है–जो अपने रक्त और पसीने से इस व्यवस्था को जीवन देते हैं, सभ्यता को आगे बढ़ाते हैं, वे ही अन्न उपजाने वाले हैं और सही अर्थों में सत्यवादी हैं। नागरिकों की समझ और कर्त्तव्य ही समाज की रीढ़ है।

अगले अध्याय में उन्होंने नागरिकों के कर्त्तव्य पर ही विस्तार से विचार किया है। इसकी नैतिकता थोड़ी धार्मिक रूप–रंग वाली है और वे परोपकार और दुःखियों के प्रति दया जैसे भावों पर भी अलग से सोचते–विचारते हैं। यहाँ भी उनका विद्रोही तेवर दिखाई देता है क्योंकि यह उनकी चेतना का स्थायी हिस्सा हो चुका था।

गोकुलजी ने आगे चलकर बड़े ही सशक्त स्वर में धार्मिक पाखंडों, रूढियों और अंधविश्वासों पर जोरदार आक्रमण किया। अपने अत्यन्त धारदार तर्कों से अभिमन्यु की तरह आरोपों के व्यूह को छिन्न–छिन्न कर दिया। उनके मूल तेवर के ढेर सारे सूत्र यहाँ मिल जाते हैं। परोपकार या दान जैसी प्रवृत्तियों से समाज में एक ऐसा अंग भी विकसित हो गया हैं– जो गलित है। समाज का यह अंग धर्म पर पलने वाले पराजीवियों का है– जो दुष्ट, आलसी, हरामखोर, ढोंगी और ठग हैं। इस दुर्नीति से समाज में बड़ी दुर्गंध फैलती है। ये सारे विशेषण गोकुलजी ने ही दिये हैं। लिखते हैं– 'भारत में दान का भाव और अर्थ आजकल बहुत बिगड़ा हुआ है जिसमें देश का बहुत बड़ा अधःपतन देखने में आ रहा है।' समाज की हर सड़ाँध पर ध्यान देना और उसमें आमूलचूल बदलाव लाने वाली नीतियों पर विचार करना–गोकुलजी का लक्ष्य है। उनकी विकलता दंग करने वाली है। उनका सात्विक क्रोध सप्तम स्वर में फूटता है।

'आलसी, हरामखोर, संडे–मुसंडे साधू बने फिरते हैं, हराम का खाते हैं और मूर्खता, आलस्य व बदमाशी फैलाते हैं इन्हें मजूरी बतलाना चाहिए औपचारिक दान देना पाप है।' समाज को जाग्रत करने का यही वह स्वर है–जो नवजागरण को असाधारण बनाता है। गलत के प्रतिकार में सिर्फ विचार ही नहीं है–इसके विरूद्ध एक ललकार भरी प्रेरणा भी है। गुलाम देश में इनका बोझ उठाना समाज के लिए और घातक है। ये ही लोग गुलामी के भी बड़े कारक हैं। धर्म के ठीकेदारों के विरूद्ध जनता को उठ खड़ा होना चाहिए। गोकुलजी बताते हैं--इन्हें दान देना घोर पाप है जिसके कारण भारत पतित होता जा रहा है। अगर पतित समाज रहेगा तो गुलामी भी बनी रहेगी। गोकुलजी समाज की धार्मिक भावनाओं के ऐसे दोहन से हमें सावधान करते हैं क्योंकि, 'इस अधदान से हरामखोर, भिखारी और आलसी बढ़ते हैं, दुराचार की वृद्धि होती है। देखो भारत से अधिक भीखमंगे, हरामखोर किसी देश में नहीं हैं। यहाँ भीखमंगों की बड़ी भारी जाति, एक बड़ा रोजगार जान एक महान् संप्रदाय बन गई है। भीखमंगे अपने को

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सर्वोत्तम जीविका वाले पूज्य समझते हैं क्या यह देश के डूबने के लक्षण नहीं हैं?'

दान–भीख पर पलनेवाला साधुओं, पंडों और पुरोहितों का यह वर्ग समाज में पूज्य भी है– यह बात उन्हें बहुत नागवार लग रही है। ऐसे में सचमुच इस देश को डूबने से बचा पाना असंभव है। दान का दूसरा रूप सरकारी भी है और जिस ब्रिटिश नौकरशाही की तारीफ करने में अंग्रेजीजीवियों को संकोच–शर्म नहीं आती, गोकुलजी उनकी बेहिचक आलोचना करते हैं। उनके पास समाज को परखने वाली सूझ–समझ से भरी दृष्टि है, क्योंकि उनकी प्रतिबद्धता साधारण जनता के प्रति है। लिखते हैं–'बड़े–बड़े पेट के नौकर तनख्वाह भत्ता आदि के नाम से कभी–कभी अधर्म से भी रुपये में बारह आना डकार जाते हैं, जिनके वास्ते धन दिया है उन्हें चार आना भी मुश्किल से पहुँचता है, सो भी प्रेम के साथ नहीं वरन धमकी, भय और तिरस्कार के साथ। इसलिए गोकुलजी परोपकार और दान की भावना को नई दिशा की ओर मोड़ने के पक्षधर हैं। यह अनाथों दीनों, रोगियों, वृद्धों, देवेशों के पास पहुँचे मगर प्रेम, उदारता, लज्जा, भय और प्रतिष्ठा से। वे सख्त हिदायत भी देते हैं कि–'हरामखोर, योगी, सेवड़े, संन्यासी और बनावटी पंडे, पुजारी, नट, कंज़र लोग दान के पात्र नहीं होते। उनके अनुसार दान की राशि का उपयोग ऐसा हो–जिससे समाज आधुनिक युग में विकास कर सके–सभ्य, सुसंस्कृत और समुन्नत हो सके। इसके लिए उनका सोचना है–

'विज्ञान-वृद्धि को जो श्रमालय या वैज्ञानिक महाविद्यालयादि बनते हैं उनमें जो धन दिया जाता है, परोपकारिक दान नहीं, क्योंकि उससे देश के बच्चे–बच्चे को लाभ पहुँचता है वह दान आत्मोपकारी दान है। जितना शिक्षा का व्यय घटेगा, शिक्षा सस्ती होगी, जितने अधिक श्रमालय, परीक्षा-गृह, पुस्तकागार अधिक होंगे उतनी ही जल्दी देश उन्नति करेगा अर्थात् हमारी उन्नति होगी। इस विचार से उच्च शिक्षा के निमित्त धन देना धनिकों का परम कर्त्तव्य है।' गुलाम भारत का समाज जिसका अज्ञानता और रूढ़ियों में जकड़कर पतन हो चुका है–उस समाज की उन्नति विज्ञान, कारखानों और ज्ञान–विज्ञान के उपक्रमों से ही होगी। आने वाले युग में हमारा समाज कैसे मजबूती से खड़ा हो पायेगा? यह चिंता थी–नवजागरण के इस महान् सेनानी की ! ऐसा सोचना था–राधामोहन गोकुल का ! समाज के ये दुष्ट जिसके प्रति परोपकार नहीं है– उनके लिए हमारी क्या नीति हो? इस पर भी उन्होंने विचार किया है।

इस पुस्तक का अंत–युद्ध विरोध और शांति की कामना से होता है। वे युद्ध के विरूद्ध अपने विचारों को दृढ़ता से व्यक्त करते हैं, क्योंकि एक भी आदमी को मारने का हक किसी को हासिल नहीं है। यह तभी संभव है जब समाज सही नीतियों पर चले। अंतिम दो पृष्ठों में उनकी दो कविताएँ हैं–'आनंदमयी' और 'हमारा उद्धार कैसे हो ! या हम कैसे बनें।' उनकी कविता में द्विवेदीयुगीन छाप स्पष्ट है।

●●●

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

◆ फिदेल कास्त्रो

आतंकवाद और युद्ध संकट

आतंकवाद के पनपने के चाहे जितने गहरे स्त्रोत हों, कितने ही आर्थिक और राजनीतिक कारण हों, और इसे विश्व भर में फैलाने के लिये चाहे कोई भी जिम्मेदार क्यों न हो, पर इस बात से कोई भी मुंह नहीं फेर सकता कि आज आतंकवाद एक भयानक और नैतिक तौर पर निंदनीय तथ्य है, जिसे हमें जड़ से उखाड़ फेंकना होगा।

अमरीकियों पर हुए इस अनपेक्षित हमले और उससे हुई हजारों दर्दनाक मौतों द्वारा थोपी गई मानवीय एंवं मनोवैज्ञानिक क्षति, जिससे समूचा संसार स्तब्ध है, के प्रति ये सर्वसम्मत रोष पूर्णतः जायज है। परन्तु इस सबसे किसको लाभ हुआ है? उन्हें जो चरम दक्षिण पंथी हैं और वे कट्टर दक्षिण पंथी, जो संसार में बाकी बची प्रगतिशील एवं क्रांतिकारी ताकतों को कुचल देना चाहते हैं।

इस समूचे प्रयास के पीछे चाहे किसी का हाथ हो, चाहे जिसने इसे स्वचालित किया हो, एक जघन्य अपराध, एक प्रचंड भूल और बहुत बड़ा अन्याय था।

चाहे जो हो किन्तु इस त्रासदी को बगैर सोचे समझे एक ऐसे युद्ध की शुरूआत के लिए इस्तेमाल नहीं किया जाना चाहिए, जो बड़े ही अजीबो--गरीब और बेढ़ंगे अमरीकी नारे 'संपूर्ण--न्याय' के नाम पर असंख्य मासूम लोगों की सामूहिक हत्या को एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया को जन्म दे सकता है। ऐसा शायद ही कोई हो जो इसको बहुत पहले से चल रही एक सोची समझी साजिश का नतीजा नहीं मानता होगा। यह कुछ--कुछ ऐसा है जिसको सरअंजाम देने के लिए बस सही मौके की तलाश थी। शीत युद्ध की तथाकथित समाप्ति के पश्चात भी पश्चिमी ताकतों को जो अपने को हथियारबंद करती रहीं और मानव जाति के सम्पूर्ण विनाश में सक्षम हथियारों का विकास करती रहीं, यह भली भांति मालूम था कि सैन्य शक्ति में उनका यह भारी भरकम पूंजी निवेश उन्हें संसार के अन्य सभी लोगों पर सम्पूर्ण प्रभुत्व कायम करने मे सहायक होगा।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

साम्राज्यवादी व्यवस्था के सिद्धान्तकारों को यह मालूम था कि वे क्या कर रहे हैं और क्यों कर रहे हैं?

अमरीकी जनता को निशाने पर रख कर हुए आतंकवादियों के इस बर्बरतापूर्ण एवं उन्मादी हमले के प्रति संसार भर के जनमानस की सहानुभूति एवं दुःख प्रकट करने के पश्चात, चरम दक्षिण पंथी सिद्धान्तकारों एवं युद्ध के लिए तत्पर युद्धोन्मादियों ने, जो पहले से ही काफी शक्तिशाली हैं, संसार से उस सर्वशक्तिमान देश की कमान अपने हाथों में ले ली, जिसकी सैन्य एवं तकनीकी सामर्थ्य असीम है उसकी प्रहारक एवं विनाशक क्षमता अपार है। इसके विपरीत शांतिप्रियता, वैचारिक स्थिरता, विचारशीलता एवं संयम बरतने के प्रति उसकी प्रवृति लेशमात्र है।

आपराधिक प्रवृतियों सहित उक्त सभी तत्वों का संयोजन, अन्य धनी एवं शक्ति-सम्पन्न राष्ट्रों का समर्थन, सर्वव्याप्त अवसरवाद दुविधा और चारों ओर फैली अफरातफरी, सभी एक ओर संकेत करते हैं कि इसका नतीजा बहुत भयावह होगा और साथ ही साथ भविष्यवाणियों के परे होगा।

इस सैन्य कार्यवाही का पहला शिकार होंगे गरीब एवं अविकसित देशों में रह रहे करोड़ों वे लोग जो अपनी आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं से उबर पाने में असमर्थ हैं। वे जो अपना कर्ज चुकाने में असमर्थ हैं। इस सैन्य कार्यवाही से प्रभावित होंगे, उन अविकसित एवं गरीब देशों के, वे असंख्य लोग जो अपनी आर्थिक एवं सामाजिक विषमताओं से जूझ रहे हैं। वे देश जहां लोग रोजमर्रा की जरूरत की चीजों के आसमान छूते दामों से त्रस्त हैं। वे देश जो प्राकृतिक एवं पर्यावरण की आपदाओं का शिकार हैं। वे जो भूख एवं लाचारी से झुलस रहे हैं। अपर्याप्त भोजन के फलस्वरूप पूर्ण विकास से वंचित बच्चों, युवाओं एवं वयस्कों से भरे वे देश। एड्स, मलेरिया, तपेदिक जैसे संक्रामक रोगों की मार से दबे वो सभी देश और वे देश जहाँ महामारियों से सम्पूर्ण प्रजाति के विनाश का खतरा पैदा होता जा रहा है।

सम्पूर्ण विश्व पर आर्थिक संकट और मंदी के मंडराते बादल एक बेबाक सच्चाई है और लगभग सभी बड़ी आर्थिक ताकतें इसकी चपेट में हैं। यह संकट इन नई परिस्थितियों में और भी गहन होता जाएगा और जब यह संकट समूचे विश्व की बहुल जनता के लिए असहनीय हो जाएगा तो यह सम्पूर्ण विश्व में अव्यवस्था, विद्रोह और अराजकता को जन्म देगा।

यह इतना भयावह होगा कि विश्व के सम्पन्न राष्ट्र भी इसका खामयाजा भुगतने के लायक न होंगे। आने वाले कई वर्षों तक पर्यावरण और जैवीय संतुलन पर ध्यान देना असम्भव होगा। शोध एवं नए विचारों पर अमल सम्भव न हो सकेगा। प्रकृति के संरक्षण के कार्यों के प्रति भी ध्यान देना मुश्किल होगा, क्योंकि इन सब से ध्यान हटकर सैन्य कार्यवाही, युद्ध और अपराध पर केन्द्रित होगा जो कि उतने ही अनंत हैं, जितना कि उस युद्ध को दिया गया 'सम्पूर्ण न्याय' का अमरीकी नारा जो कि अभी प्रारम्भ होगा।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अमरीकी काँग्रेस में राष्ट्रपति जॉर्ज बुश द्वारा मात्र छत्तीस घंटे पहले दिए गए भाषण के बाद क्या अब भी कोई आशा की किरण बाकी है? मैं इस सम्बोधन के लेखक (अमेरीकी राष्ट्रपति) के विरूद्ध किसी भी विश्लेषण, अपशब्द या बुरे वाक्यों से, जहां तक सम्भव हो सके, बचने की कोशिश करूंगा। मैं समझता हूँ कि स्थिति की गम्भीरता एवं तनाव को देखते हुए, जहां विचारशीलता और संयम की आवश्यकता है, कैसे भी अपशब्द अप्रासंगिक हैं। मैं अपने को कुछेक अत्यंत छोटे वाक्य खण्डों तक सीमित रखते हुए सब कुछ समझने का प्रयास करूंगा।

अमरीकी राष्ट्रपति के कुछ वक्तव्य बिन्दु

- **हम युद्ध के लिए हर प्रकार के और हर सम्भव हथियारों का प्रयोग करेंगे।**
- **अमरीकियों को केवल एक युद्ध की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए, बल्कि एक लम्बा (ऐतिहासिक) अभियान जो आज तक किसी ने न देखा होगा।**
- **हर क्षेत्र के प्रत्येक देश को एक निर्णय लेना होगा, या तो आप हमारे साथ हैं या फिर आतंकवादियों के साथ।**
- **मैंने सेना को सर्तक रहने का संकेत दे दिया है और उसके पीछे एक वजह है, अब वह समय आ गया है जब अमेरिका प्रहार करेगा और सारे देश उसकी मदद करके उसे गौरवान्वित करेंगे।**
- **यह समूचे संसार की लड़ाई है, समूची सभ्यता की लड़ाई।**
- **मैं इस लंबे संघर्ष में आपसे धैर्य रखने की प्रार्थना करता हूँ।**
- **हमारे समय की यह एक महान उपलब्धि है एवं प्रत्येक समय की महान आशाएँ अब हमारे ऊपर निर्भर हैं।**
- **हालांकि इस संघर्ष का क्रमबद्ध रास्ता ज्ञात नहीं है परन्तु इसका परिणाम तय है और हम जानते हैं कि ईश्वर 'तटस्थ' नहीं रहेगा।**

पुनः फिदेल कास्त्रो :

मैं अपने देशवासियों से अपील करता हूँ कि वे उपर्युक्त वाक्य-खण्डों में छिपे विचारों एवं मंशाओं पर गहनता एवं शांति से मनन करें।

1. या तो आप हमारे साथ हैं या आतंकवादियों के साथ।

   इसमें किसी भी देश को संदेह की परिसीमा से बाहर नहीं रखा गया है। बड़े एवं शक्तिशाली राष्ट्रों को भी नहीं। कोई भी युद्ध व हमलों की धमकियों से नहीं बच सका है। हम किसी भी प्रकार के हथियारों व युद्ध-सामग्री का इस्तेमाल करने से नहीं चूकेंगे। नैतिक परिणामों की घोर अवहेलना करते हुए युद्ध की किसी भी प्रकार की कार्य-प्रणाली को वर्जित नहीं रखा गया है। हो सकता है

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इसमें परमाणु, रासायनिक एवं जैवीय हथियारों के खतरों को भी पूरी तरह नजरअंदाज कर दिया जाए।

2. यह कोई छोटा–मोटा संघर्ष नहीं होगा बल्कि एक लम्बी ऐतिहासिक लड़ाई होगी जो शायद कई सालों तक चले। यह सारे संसार की लड़ाई है। समूची सभ्यता की लड़ाई। हमारे समय की एक महान उपलब्धि एवं प्रत्येक समय की आशा अब हम पर निर्भर है।

और अंततः युद्ध की पूर्व संध्या एवं विनाश के एक नए युग की शुरूआत में अमेरीकी राष्ट्रपति के राजनीतिक भाषण में कदाचित न सुनी जाने वाली आत्म स्वीकृतिः 'यह संघर्ष कौन सी दिशा लेगा, किसी को नहीं मालूम परन्तु इसका परिणाम निश्चित है और हमें मालूम है कि ईश्वर 'तटस्थ' नहीं है।'

यह एक आश्चर्यजनक और दंभ भरा दावा है। जब मैं इस बेढंगे धर्मयुद्ध, जो कि शुरू होने ही वाला है, में शामिल सभी वास्तविक एवं काल्पनिक शक्तियों के बारे में विचार करता हूँ, तो मेरे लिए यह निश्चित करना असंभव हो जाता है कि धार्मिक उन्माद और कट्टरता किस ओर अधिक शक्तिशाली है।

गुरुवार को, अमरीकी काँग्रेस के समक्ष सिर्फ शक्ति पर आधारित विश्वव्यापी सैनिक तानाशाही का प्रस्ताव रखा गया, बगैर अन्तर्राष्ट्रीय कानून एवं संस्थागत सहयोग के। संयुक्त राष्ट्र जिसे इस वर्तमान मुसीबत में पूरी तरह नजरअंदाज कर दिया गया, के पास भी कोई विशेषाधिकार एवं शक्ति नहीं होगी। इस समूचे परिदृश्य में केवल एक स्वामी, एक न्यायाधीश एवं एक ही कानून होगा।

हम सभी को आदेश मिला है कि या तो हम संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ हो जाएं या आतंकवाद के साथ।

क्यूबा वह देश है जो आतंकवादी हमलों एवं कारगुजारियों से सबसे अधिक और लम्बे समय तक प्रभावित रहा है, और जहाँ की जनता किसी भी चीज से तनिक भी भयभीत नहीं है, क्योंकि संसार में ऐसी कोई भी शक्ति या धमकी नहीं जो उसे आतंकित कर सके, अपनी नैतिक शक्ति से यह दावा करता है कि वह आतंकवाद एवं युद्ध दोनों के ही खिलाफ है। हालांकि समय बहुत कम है और स्थितियां बहुत ही असमान्य, फिर भी क्यूबा उस महाविनाशक युद्ध को टालने की एक बार पुनः अपील करता है, जिसके प्रणेता तक यह नहीं जानते कि इस युद्ध में कितनी अपार क्षति हो सकती है। साथ ही साथ क्यूबा यह भी ऐलान करता है कि वह संसार के अन्य सभी राष्ट्रों के साथ मिलकर आतंकवाद की सम्पूर्ण समाप्ति के लिए प्रयास करेगा।

कोई निष्पक्ष एवं अशांत मित्र अमरीकी सरकार के हुक्मरानों को समझाए कि वह जवान अमरीकी सैनिकों को एक दुर्गम, एकांत एवं दूरवर्ती प्रदेश में लड़े जाने वाले युद्ध में न धकेले। एक युद्ध जो कि फैन्टमों (काल्पनिक पात्र) के खिलाफ हो, जिनके बारे में यह भी ज्ञात नहीं है कि वे वास्तव में है भी या नहीं और विशेषतः जब यह सुनिश्चित नहीं है कि जिन लोगों को वे मौत के घाट उतारने का प्रण ले चुके हैं,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वास्तव में वही लोग हजारों मासूम अमरीकियों की मौत के लिए जिम्मेदार हैं।

क्यूबा कभी भी अपने को अमरीकियों का शत्रु घोषित नहीं करेगा, उन अमरीकियों का जो आज बदले की भावना एवं घृणा के बीज बोने के लिए चलाए जा रहे एक अपूर्व अभियान में शामिल होने के लिए इस कदर बाध्य है कि शांति के लिए प्रयोग में लाए जाने वाले उनकी तरह के संगीत को भी प्रतिबंधित कर दिया गया है।

इसके विपरीत क्यूबा उस संगीत को अपनाएगा और क्यूबा का बच्चा–बच्चा शांति के संगीत को तब तक गाएगा जब तक यह उद्घोषित युद्ध चलेगा।

चाहे कुछ भी हो, क्यूबा की भूमि को अमरीकी लोगों के खिलाफ आतंकवादी गतिविधियों के लिए इस्तेमाल करने की इजाजत नहीं दी जाएगी और हम अपनी अधिकार सीमा में इन सब कार्यों को रोकने का भरसक प्रयास करेंगे। आज हम शांति और सौहार्द की अपील करते हुए विश्वबन्धुत्त्व की कामना करते हैं और एक दिन आयगा जब वे यह मानेंगे कि–हम सही थे। दिन आएगा जब वे यह मानेंगे कि हम सही थे। **यदि हम पर हमला होता है तो हम अपनी स्वतंत्रता, अपने सिद्धांतों, अपनी सामाजिक उपलब्धियों, सभी को खून के आखिरी कतरे तक बचाने की कोशिश करेंगे।**

इन सभी कार्यों को करना कदापि आसान नहीं होगा। यह हमें भली भांति मालूम हैं और अब जबकि अमेरिका हर प्रकार के हथियारों के इस्तेमाल की बात करता है, यह याद रखना अच्छा होगा कि हमारे लिए यह सब कुछ नया अनुभव नहीं है। तकरीबन चार दशक पूर्व, सैकड़ों अति संवेदनशील एवं विनाशक परमाणु अस्त्र क्यूबा की ओर केन्द्रित थे और शायद किसी को यह याद नहीं कि हमारे देश का प्रत्येक नागरिक कितना विचलित और परेशान था।

हम उन्हीं बहादुर लोगों की संतानें हैं जो अपने भीतर देश-भक्ति और क्रांति की कहीं अधिक भावनाएं समेटे हुए हैं। अब समय है शांति और साहस का।

संसार इस भयानक नाटक को, जो उसे भयभीत किए है, समझेगा और उनके खिलाफ आवाज उठाएगा। इन तमाम कार्रवाईयों को अंजाम देना कदापि आसान नहीं होगा। हमें मालूम है। और जब अमेरिका तमाम विध्वंसक हथियारों के इस्तेमाल की धमकियाँ दागता है तो यह याद कायम रखना बेहतर होगा कि–यह सब कदापि कोई नया अनुभव नहीं है। तकरीबन चार दशक पूर्व सैकड़ों संवेदनहीन जीव–जगत ध्वंसक शस्त्राशस्त्र क्यूबा पर निशाना साधे रहे। और शायद किसको याद नहीं कि हमारे देश का प्रत्येक नागरिक कितना विचलित और संत्रस्त था। हम उन्हीं बहादुर लोगों की संताने हैं, जो अपने भीतर देशभक्ति और क्रांति की किसी से भी, कतई ज्यादा जजबातें समेटे हुई है। **अब समय है शांति का - और साहस का।** संसार इस भयानक नाटक को, जो उसे भयभीत किए है, समझेगा और उसके खिलाफ आवाज उठाएगा।

●●●

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कथा

◆ अमरकान्त

पोखरा

वही हुआ। मैंने मेधा से कई बार कहा था, मौसम अच्छा है, कोई झंझट न करो, समय पर निकल चलेंगे तो शाम तक बीरगंज पहुँचकर रात भर विश्राम करेंगे और अगले दिन आराम से पोखरा के लिए रवाना हो जायेंगे। लेकिन वह एक ही तरीका जानती है—आँखें न मिलाओ, हूँ-हूँ के पश्चात् अन्त में अपनी वाली ही करो।

मेरी समझ में नहीं आया कि क्या जरूरत थी उसी दिन तड़के ही उठकर उतने कपड़ों और दो मोटी चादरों की लादी फींच कचार कर सुखाओ और प्रेस करो। फिर नाश्ते में सबको दलिया और पराठे तथा भोजन में खिचड़ी खिलाकर रास्ते के लिए पूड़ियाँ, मोएन डालकर मीठे ठेकुए तथा आलू परवल की मसालेदार लटपट तरकारी बनाने बैठ गई। मोमबत्ती, माचिस की डिबिया, अगरबत्ती, अंजन-मंजन, साबुन, कंघी, तेल, कई प्रकार के साफ, फटे कपडे, अखबारी कागजों में सबकी चप्पलें तथा अन्य कई अटरम-सटरम सामान सहेज कर रखने में उसने काफी समय लगा दिया। भारी होल्डाल देखकर मैं तो चिल्लाने ही लगा—'क्या तुम हमेशा धर्मशाला में ठहरने की इच्छा लेकर ही यात्रा करोगी ? क्या तुम यह कभी नहीं समझ सकोगी कि सराय और धर्मशाला का समय गया, आज आधुनिक से आधुनिक होटल खुल गये हैं, जहाँ ओढ़ना-बिछौना की जरूरत नहीं होती ?''

यही नहीं, समय-सीमा के उल्लंघन के काफी देर बाद जब महरी वादा के बाद भी नहीं आई तो स्वयं जूठे बर्त्तन चमाचम साफ करके करीने से सजाए कि लौटने पर यह सब कौन करेगा। और अन्त में बच्चों को ठेल-ठेल कर बारी-बारी से टायलेट में घुसाया कि रास्ते में कोई परेशानी न पैदा कर दें।

जमाना तेजी से बदल रहा है ऐसे समय में कोल्हू का बैल बनने की क्या जरूरत है ? मैं तो समझता हूँ कि मेरी पत्नी और बच्चे स्मार्ट, चालाक, आधुनिक बनें।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अपने परिवारजनों को नई-नई जगहें घुमाने का ऐसा शौक और किसके पास होगा ? काठमांडू तो उन्हें विमान-मार्ग से पहले ही ले जा चुका हूँ और इस बार नई कार पर सड़क-मार्ग से जाने का कार्यक्रम है—पहले रक्सौल-वीरगंज फिर पोखरा और अन्त में वहाँ से नेपाल की राजधानी।

पिछले वर्ष दशहरा की छुट्टियों में ही जाने का प्रोग्राम था, मगर बनारस से मेरे साले साहब अपनी पत्नी और बच्चों के साथ आ गये। उसके बाद गर्मी में बच्चों के स्कूल बन्द होने पर यह अवसर मिला है। गर्मी जरूर पड़ने लगी है, मगर बच्चे जिद्द करने लगे। फिर पोखरा और काठमांडू में इतनी गर्मी थोड़े ही पड़ेगी।

काफी विलम्ब के बावजूद जब हम पटना से रवाना हुए तो वर्तमान और भारी जिम्मेदारी की वजह से आन्तरिक तनाव के कांटे स्वतः ही नीचे बैठ गये। शहर से बाहर निकलने पर पसीने की वजह से हवा के तेज झोंके सुख देने लगे। बाल बच्चों के साथ जल्दीबाज़ी वैसे भी ठीक नहीं होती। मैं आराम से धीरे-धीरे ही ड्राइव कर रहा था। बिहार के विभिन्न अंचलों की हरियाली दर्शनीय होती है और उस हरे रंग के अनगिनत शेड्स पेड़-पौधों, झाड़ी, झंखाड़ों, खेतों, जंगलों से झलक रहे थे। और उनमें और भी कई रंग घुले-मिले थे, जैसे पकी या पकती फसलों के धूसर पीले या कलौंछ रंग। आम वृक्षों पर लदे टिकोरे या कुछ अन्य पेड़ों पर देर से आई बौरों के लाल-पीले-हरे और अन्य रंग। इससे पहले कभी भी प्रकृति के इन विविध रंगों की ओर मेरा ध्यान गया ही न था।

मेरा हृदय आनन्द से भर गया। मैंने मेधा और दोनों बच्चों की ओर देखा। उनकी आँखें अपूर्व अनुभव के आश्चर्य, खुशी एवं ताजगी से चादर की तरह फैली हुई थीं। मेरा पुत्र अभिषेक आगे मेरे ही, पार्श्व में बैठा है। वह अपनी उम्र के अनुपात से कुछ अधिक ही लम्बा है। उसे क्रिकेट, वीडियो गेम्स, फिल्मी नायक, नायिकाओं के पिक्चर कार्ड्स, चाकलेट और कोल्ड-ड्रिंक्स से अतिशय प्रेम है। पीछे की सीट पर मेरी पुत्री नमिता अपनी माँ के साथ बैठी है, जो पन्द्रह वर्ष की उम्र के हिसाब से अधिक गम्भीर है, जिसे साहित्यिक पत्र-पत्रिकाएँ, कामिक्स पढ़ना पसन्द है और जो मेधा की तरह विनम्रतापूर्वक मुस्कराती रहती है।

किन्तु मुजफ्फरपुर के पहले ही कार में कोई मामूली खराबी आ गई और मरम्मत कराने में और भी विलम्ब हो गया। वहाँ से बाहर निकालने पर पता नहीं कब सारे रंग तेजी से उतरती शाम के गहरे धुंधलके में डूब गये। मैंने कार स्पीड कुछ तेज कर दी। मोतीहारी के आगे आकाश पर बादल घिर आये। हवा में भी तेजी थी। कुछ ठंडा-सा लगने लगा। मेधा का ध्यान पहले से ही इस ओर था, उसने पास रखे बैग में से एक-एक हाफ स्वेटर निकाल कर सबको दे दिया।

रक्सौल हम रात में करीब साढ़े नौ बजे पहुँचे। लेकिन वहाँ सीमा चुंगी ने कार रोक ली। इस समय किसी वाहन के सीमा के पार वीरगंज जाने की इस समय

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अनुमति न देना अश्चर्यजनक लगा। कुछ गुस्सा भी आया। 'सवेरे आठ बजे आकर कार ले जाइयेगा' यह कहकर उसने एक कागज पर कुछ लिख कर मुझे थमा दिया।

मैं पहले ट्रैंवलिंग एजेन्सी चला चुका हूँ जिससे यहाँ से काठमांडू तक अनेक होटल मालिकों से मेरी घनिष्ठता है और वे अब भी मुझे एक कमरा दे देते हैं मुफ्त। स्वागत-बात अलग। वीरगंज के होटल में आराम ही आराम था, लेकिन होटल मालिक अजय राय ने दूसरे दिन सुबह मेरे लिए एक पहाड़ी ड्राइवर वाली अच्छी गाड़ी मंगा दी और कहा, "पहाड़ पर तुम खुद ड्राइव न करो, इसके लिए अनुभवी ड्राइवर चाहिए। लौटते समय अपनी कार मुझसे ले लेना।"

पोखरा के लिए प्रस्थान करने के कुछ देर पहले मुझे दवाइयों की अपनी उस पेटी की याद आ गई, जिसमें जरूरत की कुछ एलोपैथिक गोलियाँ, होम्योपैथिक और आयुर्वेदिक दवाइयाँ थीं, जिनके बीच चाइना बाम भी अनिवार्य रूप से रखा रहता था, जो हर तरह के दर्द, फोड़ा, फुन्सी, कटे-फटे, मामूली हरारत-बुखार तथा अन्य कई अबूझ तकलीफों में 'रामबाण' समझ कर दे दिया जाता था। पेटी मैं ही अपने ड्राइंग रूम में रखता और किसी को भी छूने नहीं देता था। कहीं जाना हो तो मैं ही उसे अपने साथ ले जाता था, लेकिन इस बार पता नहीं कैसे साथ ले आना भूल गया।

'अरे दवाइयों की पेटी साथ में रख ली थी न' मैंने मेधा को चिड़चिड़ाई दृष्टि से देखा।

'अरे कहाँ ? वह तो–मैंने समझा आपने रख ली होगी'–वह घबराहट में पूरी बात कह न सकी और उसकी आँखों में डर की स्याही फैल गयी।

'दुनिया का हर गैर-जरूरी काम तुम्हे याद आ गया और एक बेहद जरूरी चीज पर तुम्हारा ध्यान नहीं गया। तुमसे यही उम्मीद थी।' मैंने अपने गुस्से को किसी तरह दबाया।

'ए नमिता, तुमने भी ख्याल नहीं कराया।' मेधा ने मेरी लापरवाही पर कोई टिप्पणी करने की जगह अपनी आरोपित जिम्मेदारी लड़की पर थोपने की कोशिश की।

'चलते समय तो कोई एक काम मकी भी मदद आपकी नहीं करता। दवाई की पेटी छूने पर आपकी कई बार नसीहत भी हो चुकी है। आप हर बात के लिए अपने को ही जिम्मेदार क्यों समझती हैं !'

मैं सन्न रह गया। मेरी आँखें स्वतः ही नीचे झुक गई। नमिता में कई अच्छाइयाँ हैं, काम भी खूब करती है, विनम्र भी है, मगर वह अन्याय की कोई बात बर्दाश्त नहीं कर पाती और कटु सत्य के रूप में जैसे विष ही उगल देती है। मेरा गुस्सा बुझ गया और मेरे होठ एक समझौतावादी और दब्बू किस्म की घरेलू हँसी से फैल गये।

'अच्छा, छोड़ो, पोखरा में दवाइयाँ ले लेगे ..' मैंने कहा।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

काठमांडू-मार्ग पर तो पोखरा नहीं है, बल्कि एक स्थान पर दूसरा मार्ग उससे अलग होकर थोड़ा नीचे की ओर जाता है वीरगंज से खा-पीकर आराम करने के बाद ही हम रवाना हुए थे, इसलिए अपने गन्तव्य पर करीब दस बजे रात में पहुँचे। बाजार बन्द हो चुका था। चारों ओर घोर अन्धकार, जिसे मेधा और बच्चे डरी-डरी दृष्टि से घूर रहे थे जो अपने अन्दर छिपी पर्वत श्रेणियों की गहरी, धब्बानुमा रहस्यमयी आकृतियों का आभास दे रहा था।

होटल का द्वार चौकीदार ने खोला। वह एक नया, नेपाली युवक था। पहले भी इस होटल में दो-चार बार आ चुका हूँ। तब मेरे सभी पर्यटक इसी होटल में भेजे जाते थे। लम्बी-चौड़ी लाबी में काउन्टर पर बैठा व्यक्ति मुझे जानता था। मुझे देखकर वह अभिवादन करते हुए कुर्सी से उठ खड़ा हुआ ' अरे, आइये साहब।' उसने तत्काल और सहर्ष दो-बिस्तरों का एक कमरा ऊपर की मंजिल पर एलाट करके चौकीदार को हिदायत दे दी। चौकीदार सामान ले जाते वक्त स्वतः बड़बड़ाने लगा :

'पोखरा का शबशे अच्छा होटल है शाब। यहां शब-कुछ मिलता, शब आराम। यहां दूर-दूर से लोग आता—पाकिस्तानी, अमरीकी, अंग्रेज, चीनी, जापानी शाब शैर-शपाटा करता। शुबह अन्नपूर्णा की चोटी पर 'श्नो व्यू' देखता। शुबह होने में कुछ समय बाकी रहे, तभी होटल की शबशे ऊपरी छत पर पहुंचना होता। इन्तजार करना होता शाब। उधर गहरी घाटी में शूरज का लाल-लाल गोला निकलता और अन्नपूर्णा की बर्फीली चोटी पर शोना पिघल कर फैल जाता। यही समय है, शाब। बड़े भाग्य से देखने को मिलता। अन्नपूर्णा देवी है शाब, उनका दर्शन करके मन पवित्र हो जाता है ....।'

हम काफी थक गये थे। कमरा सचमुच अच्छा था। अभिषेक एक विस्तरे पर बिना कपड़े बदले और जूते उतारे नीचे पैर लटका कर लेट गया। मैं भी पीठ सीधी करने के लिए दूसरे बिस्तरे पर उसी तरह लेटा और जल्दी ही खर्राटे लेने लगा।

'ए बाबू, उठो, खाना खा लो,' मेधा जब बार-बार पुकार कर अभिषेक को जगाने लगी मेरी नींद खुल गयी। मैं चौंक कर उठा। इस बीच मेधा कपड़े बदल कर तैयार हो गई थी और नींद में बेहोश अभिषेक के पैरों से जूते निकाल कर उसके मोजे उतार रही थी। नमिता भी अपनी माँ के साथ लगी थी और कपड़े बदल कर एक गोल, मोटे शीशे से ढकी मेज पर कटोरदान और प्लेटें सजा रही थी। होटल में इस समय चाय-बिस्कुट और पानी के अलावा कुछ भी उपलब्ध नहीं था।

'चलो, जल्दी-जल्दी गटको ! मम्मी को गुलाम समझ रखा है क्या' जब अभिषेक कपड़े बदल तथा हाथ-मुँह धोकर बाथरूम से बाहर निकला तो वहीं खड़ी नमिता ने उसे दबी-जबान से डाटा।

'चुप !' अभिषेक इस प्रत्युत्तर के बाद मेज के पास जाकर कुर्सी पर बैठ गया। मेधा ने नरम-नरम पूरी, मसालेदार सब्जी और आम तथा सिंघ और चटपटे अचार

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

से प्लेटें सजा दी थीं और केले रखे थे। भूख भी खूब लगी थी। मोटा-महीन जो कुछ भी बनाती है। मैं अवश होकर मन-ही-मन उसकी तारीफ करने लगा, जिसको प्रकट करना जरूरी नहीं समझता। मेरा तो प्रोग्राम यह था कि जब खाना मिलेगा तो डबल रोटी, मक्खन और अंडों से काम चला लिया जायेगा। खैर, खूब जम कर खाया गया।

'क्या समय है अभिषेक।'

'एक बजा है पापा ।'

मेधा दो हलके गद्दे दो प्रेस की हुई चादरें, तकिये और दो हलके कम्बल भी ले आई थी। वह नीचे फर्श की कारपेट पर अगल-बगल दो बिस्तरे बिछाये, जिन पर माँ-बेटी सोई। मेधा की यही आदतें मुझे पसन्द नहीं हैं। हमेशा धर्मशाला में ठहरने की तीर्थ यात्रियों वाली मानसिकता।

'इसकी क्या जरूरत है ? गंवारपन की हद हो गई।' मैं भिनक कर धीमे से बोला।

'बात यह है कि नमिता और अभिषेक लम्बे हो गये हैं। ये सीधे होकर चुपचाप सोना नहीं जानते, हमेशा अपनी लम्बी टांगें दूसरे के शरीर पर फेंकते रहते हैं। अब सभी अपने-अपने बिस्तरे पर अकेले आराम से जैसे चाहें सोयेंगे।' मेधा हँसने लगी।

मुझे और भी गुस्सा आया मगर क्या बोलूँ, समझ में नहीं आया। वैसे अकेले सोने में सचमुच आराम मिला। वे जल्दी ही खर्राटे भरने लगे, लेकिन मेरी नींद उचटी उचटी रही। समय पर न सोने से मेरे साथ अक्सर ऐसा ही होता है दिमाग में कोई एक बात आती और चक्कर काटती रहती ! कुछ मच्छर भी थे। मन में यह भी था कि तड़के उठकर 'श्नो व्यू' के लिए सबको जगा कर ऊपर ले जाना है।

तीन बजे मेरी नींद एकदम उचट गई। जल्दी उठकर बैठ गया। अभी से छत पर जाकर क्या होगा ? मैं कुछ देर तक बैठा रहा। कमरे की बत्ती जल रही थी। मैं जोर-जोर से खांसने लगा, ताकि किसी की भी तो नींद खुले, किन्तु सदा चौकन्नी और कुकरनींद सोने वाली मेधा भी बेहोश पड़ी रही। मैं बाथरूम चला गया।

बाहर निकला तो चार बजे थे। मैंने सबको हिला-हिलाकर जगाने की कोशिश की। मेधा तो उठ बैठी मगर दोनों बच्चे हाथ पकड़ कर उठाने पर भी कटे वृक्ष की तरह गिर पड़ते थे।

'आप जाइये, ये बहुत थक गये हैं मैं इनके पास रहूँगी।

हम लोग भी देख लेंगे ....'

मैंने प्रयास छोड़कर एक हलका स्वेटर पहन लिया और बाहर निकल कर कुछ आगे की सीढ़ी से सबसे ऊपर की खुली छत पर पहुँच गया। वहाँ ठंडी हवा ने स्वागत किया। पूरा आकाश बादलों से ढका था। कुछ लोग पहले ही से खड़े थे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अलग-अलग चाहरदीवारी के पास। पिचके गाल वाला एक अधेड़ व्यक्ति कन्टोप लगाये पीठ पीछे हाथ बांधकर सीमित दूरी में व्यग्रतापूर्वक टहल रहा था, जैसे रात भर यही करता रहा हो। मैं चाहरदीवारी से लगभग सट कर अलग खड़े उन दो लम्बे नौजवानों की ओर बढ़ गया, जो पैंट-कमीज में अपनी-अपनी छाती पर हाथ बांधे खड़े भारत के पंजाब या हरियाणा प्रदेश निवासी प्रतीत हो रहे थे।

'अब यहाँ खड़े होने से कोई लाभ नहीं, चारों ओर बादल छाये हैं ....'

'अल्ला की मर्ज़ी से बादल छंट भी जायेंगे। आप क्या हिन्दुस्तान से आये हैं ?''

सुती नाक वाले उस व्यक्ति ने, जो अपने साथी से कम लम्बा था, छाती पर से अपने दोनों हाथ नीचे गिराकर जो सवाल किया, उससे स्पष्ट था कि वे पाकिस्तानी हैं। मैं कुछ सतर्क हो गया। 'आश्चर्य है कि किसी पाकिस्तानी से यह मेरी पहली मुलाकात थी। मेरी पैदाइश देश के विभाजन के बाद हुई, लेकिन दोनों देशों के बीच हमेशा कोई-न-कोई खुरपेंच, झगड़ा-झंझट चलता रहता है, एक के अखबारों में दूसरे के बारे में तैश भरी कड़वी बातें छपती रहती हैं, इस माहौल का मुझ पर कुछ-न-कुछ असर होना स्वाभाविक है। मुश्किल तो यह है कि आज तक मुझे यह पढ़ने को नहीं मिला कि किसी दूसरे देश में एक पाकिस्तानी से मिलने पर हिन्दुस्तानी उसके साथ कैसा व्यवहार करे ? शायद यही समस्या एक पाकिस्तानी के साथ भी हो। मैं अनजान में ही पीछे की तरफ तन सा गया। वे भी ढीले-ढाले नहीं रहे, बल्कि तनकर मुझे अचम्भे से घूरने लगे। इच्छा हुई कि मैं कुछ गोल-मोल उत्तर दे दूँ, फिर मैंने इसकी भी जरूरत नहीं समझी और सिर हिलाकर अपनी सहमति जता दी।

कुछ क्षण तो वे बार-बार मुझे देखने लगे, किन्तु अधिक लम्बी नाक वाले व्यक्ति के चेहरे पर कुछ हरकत हुई। वह हँसते हुए बोला :

'देखिए मैं अफ़जल हूँ, पेशे से डाक्टर। ये मेरे दोस्त भी वही हैं–डाक्टर मोहसिन। हम मामूली पाकिस्तानी हैं, दोनों ही लाहौर के एक गरीब इलाके में प्रैक्टिस करते हैं हम अपने पीछे बीमारी-हैरानी, दर्द-तकलीफ, मनहूसियत, मौत छोड़कर सैर-सपाटे, मौज-मस्ती, हँसी-कहकहे, इन्सानी दोस्ती और मुहब्बत के इरादे से बाहर निकले हैं। आज हमारे दोनों मुल्कों के बीच लाहौर बस चलने से माहौल भी बहुत अच्छा हो गया है। यह तो खुशी मनाने के दिन हैं आप हमारे दोस्त हैं अभी से और आप भी हमें वही समझे। आप अपने बारे में भी कुछ बताइये, हुजूर।'

निश्चय ही मुझे शर्मिन्दगी का अनुभव जरूर हुआ। सचमुच प्रधानमंत्री की बस यात्रा से मैं भी प्रभावित था। खुश था। रोज के खुच्चड़ और खुरपेंच से अच्छा था कि लोग आपस में मिलकर रहें, तरक्की करें, दुनिया के लिए मिसाल बने लेकिन 'हुजूर' कहने से उसकी बात मुझे नाटकीय लगी, जैसे मजाक कर रहा हो। उनके मन मे क्या है और वे किस उद्देश्य से यहाँ आये हैं, यह तो ईश्वर ही जानता है, परन्तु

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इन्सानी प्रेम, मैं भी, उदारता वगैरह के बारे में क्या कोई किसी हिन्दुस्तानी को उपदेश दे सकता है। वैसे भी मैं एक साधारण व्यापारी हूँ और व्यापार के लिए शान्ति और मैत्री के महत्व को जानता हूँ। मैने अपना कुछ और भी परिचय दे दिया, लेकिन यह छिपा गया कि आगे भी काठमांडू तक हमें सफर करना है।

इसके बाद कुछ दिलचस्प बातें होने लगीं। वे भारतीय संसद की खुली बहसें बड़ी दिलचस्पी से सुनते हैं। यही तो जम्हूरियत है। दोनों मुल्क की कई बातें मिलती-जुलती हैं। उनसे यह भी मालूम हुआ कि अफजल का खान्दान तो लाहौर का ही रहने वाला है लेकिन मोहसिन का खान्दान उसके अब्बू अपने भाई से अलग होकर पाकिस्तान जाकर लाहौर में बस गये। बँटवारे के बाद मोहसिन का जन्म हुआ और उसने अपनी एक यात्रा का अनुभव सुनाया जो बनारस में छूटे सगे रिश्तेदारों से मिलने-जुलने के लिए की गई थी। उसने बनारसी लंगड़ा आम, मगही पान और दशाश्वमेध घाट की तारीफ के तो पुल ही बांध दिए।

लेकिन इसी बीच बूंदा-बांदी होने लगी। हमने चौंक कर जल्दी से बाहर देखा। छंटते धुंध-भरे अन्धकार से चारों ओर फैली पर्वत चोटियाँ उभर रही थीं। ठंढक बढ़ती हुई मालूम हुई। हवा की भी तेजी और चंचलता बढ़ गयी। मोहसिन नीचे अपने कमरे में चलने को मुझे निमन्त्रण देते हुए सीढ़ी, की ओर दौड़ गया। पीछे-पीछे हम भी। आज स्नो-व्यू कहाँ मिलेगा ?

दूसरे लोग तो पहले ही वहाँ से गायब हो चुके थे। मैं भी उन्हीं के साथ उनके कमरे में जाकर बैठ गया। कुछ-कुछ सतर्क तो अब भी था मैं, लेकिन उनकी बातें अच्छी भी लग रही थीं। पता नहीं क्यों महसूस हो रहा था कि दोनों मुल्कों की आपसी कटुता जल्दी ही खत्म हो जायेगी और प्रेम और मैत्री का नया युग शुरू होगा। वे लगभग मेरी ही उम्र के थे और याराना ढंग से बात कर रहे थे। मोहसिन ने काउन्टर पर फोन करके तीन चाय का ऑर्डर दिया, फिर पहले मुझे और बाद में अफजल को देखकर कहा :

'कई साल पहले हम बनारस गये थे। मेरे वाल्देन तो पाकिस्तान चले आये थे, मगर मेरे चचाजान ने वहीं रहना पसन्द किया। उन्हें हम खालू कहते हैं क्योंकि उनकी बीबी और मेरी अम्मी सगी बहनें हैं। मैं तेरह-चौदह साल का था। मुझसे चार साल बड़ी नफीसा आपा भी हमारे साथ गयी थी, जो 'प्रिग्नैन्ट' थीं। हम वहाँ काफी दिनों तक रहे खूब लुत्फ उठाया गया। वहीं आपा के बच्चा हुआ खूब तन्दुरुस्त। उसका नाम पड़ गया 'बनारसी मुन्ना' खाला की छोटी बेटी नज़्मा जो मुन्ना को बेहद प्यार करती। उसकी बारह साल की उम्र थी निहायत शोख, गाने का बेहद शौक़। लेकिन उन दिनों सब-कुछ भूल कर मुन्ना में ही मस्त रहती। जब देखो तो मुन्ना का ही कोई-न-कोई काम करती रहती।

इसी बीच चाय आ गई। मैंने मना कर दिया कि सुबह मंजन-स्नान करने के पहले कुछ भी नहीं लेता। उन्होंने जिद नहीं की। मोहसिन ने जल्दी से चाय खत्म

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

करके कहा :

'जुदाई का मौका बड़ा दर्दनाक होता है। तड़पना, रोना, सिसकना। आगे कब मुलाकात हो। औरतों और मर्दों की भी आँखें और नाक लाल हो जाते। मगर नज़मा की हालत तो बहुत खराब थी। उसके लिए मुन्ना की जुदाई बरदाश्त के बाहर थी। उसके दो दिन पहले एक मिली-जुली खान्दानी महफिल में उसने सबको रुला दिया। एक अजीब गाना तैयार किया था उसने बनारसी जबान में। मोहल्ले की उसकी कोई हिन्दू सहेली ढोलक बजा रही थी। वह खड़ी होकर गाने लगी :

'पियारे, तोहरी याद में हम रोअलीं सारी रात,

बनारसी, तोहरी याद में हम रोअली पिछली रात,

मुन्ना, तोहरी याद में हम जगली सारी रात।

जगली, गवली, हँसलीं, रोअलीं

पियारे, तोहरी याद में हम रोअलीं सारी रात।'

इसके बाद वह अपने दोनों हाथ सीधे आगे और कुछ तिरछे फैला कर ढोलक के थांप पर लगी नाचने, थिरकने। उसकी आँखों से लगातार अश्क गिर रहे थे, जिसे उसका चेहरा भीग गया। ख़वीतीनें दुपट्टा और आँचल में मुँह छिपाकर लगी सुबकने। मुझे तो बरदाश्त न हुआ और वहाँ से भाग खड़ा हुआ ....'

मोहसिन सहसा चुप हो गया फिर सिर झुका कर नीचे देखने लगा। मुझे हँसी आ रही थी। यह नाटक है या इसमें कोई सच्चाई भी है ? मैंने बात बदलने के लिए पूछाः

'आपने कुछ देर पहले गरीबी की बात की थी। मैं तो समझता था, सिर्फ हिन्दुस्तान में ही गरीबी है। पाकिस्तान में कैसी गरीबी ?'

मोहसिन ने सिर उठाया। वे दोनों आँखें फाड़कर अचम्भे से मुझे देखने लगे। शायद जानने की कोशिश करने लगे कि मेरे कहने का क्या अर्थ है। फिर दोनों ने मेरे व्यंग्य को समझ कर ठहाका लगाया एक साथ। अन्त में अफजल ने गम्भीर होकर कहा:

'बँटवारे में सब-बुछ बँट जाता है। जमीन, जायदाद तो बटती ही है, गरीब, मरीज़, भिखमंगे, गरीबी, बेवकूफी, जहालत, नासमझी सब-कुछ दो हिस्से में बँट जाता है। इनके बीच मुकाबला भी होने लगता है। कुछ अच्छी चीजें बट नहीं सकतीं, जैसे लिटरेचर, म्यूजिक वगैरह, फिर भी बाँटने की कोशिश तो होती ही है। इत्मीनान रखिए पाकिस्तान में भी वह सब-कुछ है, जो आपके यहाँ है। इसके बारे में फिक्र करके आप क्या करेंगे। कुछ दिनों तक ऐसा ही चल सकता है जब तक अवाम जाग नहीं जाते ...।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वह हँसने लगा। मैं उठ आया। सुबह कभी हो गई थी, लेकिन पानी बन्द होने पर भी बादल छाये थे। मेधा ने सबको उठा दिया था और वह स्वयं भी नहा-धोकर तैयार हो गई थी। मैंने मेधा और बच्चों को सारी बाते बताई। मेधा मचल गई :

'अरे, बनारस के हैं ! कुछ ठेकुआ, सिंघाड़े-छिल्के का अचार, हाजीपुरी केले और मुजफ्फरपुरी लीची दे आइये न।''

मुझे सचमुच गुस्सा आ गया। वे तो मनुष्य थे, अगर मैके का कुत्ता, बिल्ली, सांप, छछूंदर कुछ भी हो, औरतें उनके प्रति भी अपनी मुहब्बत या पक्षपात जरूर प्रकट करेंगी। मेरा यह उपहास सुनकर अप्रभावित मेधा बोली :

'कैसी बात करते हैं इतनी देर तक आप उनके साथ रहे तो आप कह सकते हैं कि उनके साथ आपका कोई रिश्ता नहीं है ? ठीक है, मैका का रिश्ता ही सही, आप उन्हें दे तो आइये ....'

'अरे भाई, उनमें से एक ही बनारस का है, वह भी पाकिस्तान में पैदा हुआ ...'

'कैसी ओछी बात है ....।' मेधा ने गम्भीर होकर अपना मुँह दूसरी ओर कर लिया।

मैं उसे फटकारने वाला ही था कि अभिषेक ने प्रार्थना के स्वर में कहा, 'पापा, दे आइये न, प्लीज ! मम्मी की एक बात तो मान लीजिए ...'

मेरा सिर झुक गया। मुझे शर्मिन्दगी का अनुभव होने लगा। क्या बच्चे जानते हैं कि मैं सदा मेधा को छोटा करने की फिराक में रहता हूँ ? जब मैं उक्त सामान लेकर उन्हें देने के लिए चला तो सभी के चहरे पर मुस्कान थी। अफजल और मोहसिन, दोनों ही बड़े खुश हुए और उन्होंने बार-बार 'शुक्रिया' कहा।

रात की नींद पूरी न होने और बेहद थकान के कारण हम दिन भर होटल में ही सोते-जागते रहे। दूसरे दिन सुबह आठ बजे के करीब हम होटल से बाहर आए। दो दिनों के बाद बादल फटे थे और सूरज निकला था। हवा तेज थी और धूप सुहावनी। हम बाजार को पार करके उत्तर दिशा में सड़क पर बढ़े। पत्थरों के बीच से लुकती-छिपती, टेढ़ी-तिरछी, उतरती, चढ़ती साफ-सुथरी सड़क। कुछ दूरी पर एक ओर झील थी, जिसका जल दर्पण की तरह चमक रहा था और जिस पर नौका विहार भी हो रहा था। सब कुछ पवित्र था चारों ओर जिसमें आन्तरिक उत्साह फटा पड़ रहा था। मन और जीवन का सारा कलुष धुल-पुँछ गया। मेधा का उत्साह देखने लायक था। वह सबका साथ छोड़कर सबसे आगे एक नेपाली औरत के साथ ऊँचाई पर भी तेजी से दूर निकल गई थी। उसकी साड़ी फड़फड़ा रही थी, बाल उड रहे थे। और वह निश्चिन्त थी, जैसे वह चाहे जहाँ भी चली जाय, उसका कुछ नहीं होगा, परिवार से भी उसका वियोग न होगा और वह चलती जायेगी, चलती जायेगी ....।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पहाड़ पर धूप-छाँह का खेल चल रहा था। कभी सूरज बादल में छिप जाता और सामने छाँह हो जाती तो बगल में सुदूर गहरी घाटी में धूप पसर कर विश्राम करने लगती। कभी-कभी सुदूर सामने का पेड़ों तथा वनस्पतियों से भरा कोई पहाड़ चितकबरा -सा दिखाई देने लगता बीच-बीच में छाया के अनेक धब्बे। हम आसमान, पर्वत, हवा एवं धूप का पर्याप्त सुख लूटने के बाद वापस आकर बाजार में एक नेपाली ढाबे में घुस गये।

सभी ने रोटी, दाल, चावल खाने का निश्चय किया, लेकिन अभिषेक आलू भरे पराठे और आमलेट खाने की जिद्द करने लगा। मेधा ने मना किया :

'बाबू, तुम दो दिन से पूड़ी, ढेकुआ, लीची खा रहे हो, इस समय हलका चावल-दाल खाओ ...'

मुझे गुस्सा आ गया, 'तुम क्या हर समय उसको टोकती रहती हो। तुम्हारी वजह से उनकी पर्सनालिटी विकसित नहीं हो सकती। नहीं, उसे वही खाने दो, जो वह कह रहा है।'

जब ढाबे वाले ने दो मोटे-मोटे आलू भरे पराठे सामने रख दिए तो मेधा ने एक पराठा उठाकर सूंघा। उसने फिर मना किया, 'बाबू, आलू असआइन महक रहा है। इसे न खाओ, कहीं नुकसान न कर दे।'

मैं चिल्ला पड़ा, 'क्या जहालत है। उसे खाने क्यों नहीं देती ? उसे कुछ नहीं होगा .....।'

मेधा चुप होकर बेचारगी के भाव से नमिता को देखने लगी। अभिषेक ने आमलेट के साथ दो ही नहीं बल्कि एक और पराठा भी खाया। हमने भी चावल-दाल खाया और होटल में लौट कर विश्राम करने लगे।

शाम को मैं चौंक गया, बल्कि मुझे बड़ा आघात लगा। मैं अपने ट्रांजिस्टर पर सवेरे, दोपहर, शाम और रात को नियमित रूप से समाचार सुनता हूँ। पहली ही खबर थी कि काश्मीर के कारगिल में भारतीय सीमा की ओर पहाड़ की ऊँची चोटियों पर घुसपैठिए न मालूम कब से कब्जा जमाए बैठे हैं। पहले तो मुझे विश्वास ही न हुआ। यह कैसे सम्भव है ? गुस्से और अपमान से मैं भर उठा। मैं उसी हालत में देर तक बैठा रहा। चीनी में किसने जहर मिला दिया ? क्यों, आखिर क्यों ?

'क्या सोच रहे हैं ?' मेधा ने पास आकर पूछा।

'कुछ नहीं।' मैने रुखाई से उत्तर दिया।

इसके बाद शीघ्र ही मैं उठकर बाहर निकल गया। मैं पहाड़ी सड़क पर कुछ देर तक एकान्त में टहलना चाहता था। इसी उद्देश्य से जब नीचे उतरने लगा तो अफ़ज़ल और मोहसिन सीढ़ी से ऊपर जाते हुए बीच में मिले। लेकिन इस बीच पता नहीं क्या हो गया है कि उनको देखते ही मेरा मुँह सिकुड़ कर दूसरी ओर घूम गया और वे भी सिर झुकाकर दूसरी ओर देखते हुए ऊपर चले गये। जैसे हमारा, आपस

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

में परिचय न हो। पहली बार शाम को यह खबर आई थी और उन्होंने जरूर ही यह सुनी होगी। तभी शायद उन्होंने मुझे देखते ही सिर दूसरी ओर घुमा लिया था। हम एक दिन पहले अमन-चैन, मेल-मोहब्बत, विकास की बात कर रहे थे उत्साहपूर्वक और अब एक दूसरे की ओर तलवार की तरह तन गये हैं—शायद न चाहते हुए भी।

बाद में दूसरी गड़बड़ी यह हुई कि करीब एक बजे रात में अभिषेक को दस्त शुरू हो गये। पहले पेट में दर्द हुआ था। मैं घबरा गया। पहली लापरवाही तो मुझसे यह हुई कि दवाइयों की पेटी ले आना भूल गया। दूसरी यह कि पोखरा में आने पर भी जरूरी दवाइयां खरीदना भूल गया। अब कहाँ जाऊँ, बाजार बन्द है और सब-कुछ अन्धकार में डूबा हुआ है। पास में इलेक्ट्राल तक नहीं। मुझे अपनी मूर्खता पर पश्चाताप होने लगा, जब मैंने ढावे में आलू-भरे पराठे के मामले में मेधा को फटकारा था ! ये बच्चे के लौंडे मानते भी नहीं, रात में पता नहीं क्या-क्या खाया होगा।

मैं, बेहद घबराया हुआ, कमरे से बाहर निकल कर नीचे काउन्टर पर गया कि उसके पास दस्त की कोई दवाई हो ! उसके पास नहीं थी। मैं लौटने लगा कि किसी ने मुझे पुकारा, 'भाई जान।' काउन्टर की पल्ली तरफ अफ़जल और मोहसिन खड़े थे, जिनकी ओर मेरा ध्यान गया ही न था।

'घबराइये नहीं, ऊपर चलिए मेरे पास दस्त की दवा है। आप तो जानते ही हैं कि हम डाक्टर हैं। यहाँ हम चाय के लिए आये थे पर इस समय कुछ भी नहीं मिल सकता। चलिए हमारे साथ .....।'

उन्होंने तीन गोलियाँ दीं, जिनमें से एक फौरन देनी है। अगर कोई लाभ न हो तो दो घंटे बाद दूसरी गोली दे देनी है—निश्चित ही लाभ होगा। वे मरीज को भी देखना चाहते थे, मगर मेरे आना-कानी करने पर उन्होंने जोर नहीं दिया।

मैं बहुत गम्भीर था। उनसे तो बातचीत करने की भी मेरी इच्छा नहीं थी, विश्वास करना तो दूर की बात है। पता नहीं कैसी गोली है और किस उद्देश्य से दी जा रही है ! मैंने अपने को अजीब संकट में पाया।

मैंने भीतर जाकर मेधा को गोली तो दे दी, लेकिन साथ ही सावधान भी कर दिया :

'उन्हीं लोगों ने दवा दी है, पता नहीं कैसी दवा है .... रखे रहो, देना कतई नहीं। बाद में देखा जाएगा ....'

'क्या मतलब है आपका। जब दवा देनी नहीं तो लाये क्यों ? लड़के की हालत खराब है। दो दस्त और हुए हैं, एकदम सुस्त पड़ गया है ....।'

मेधा की इस बात से मेरा पारा आसमान पर चढ़ा दिया। मैं चिल्लाने लगा, 'तुम एकदम नासमझ हो, तुम्हें कोई बात समझ में नहीं आती। कैसे बताऊँ कि यह देश की इज्जत का मामला है। बड़ा धोखा हुआ है, फिर विश्वास किस बात के लिए

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
? खबरदार, देना मत एक गोली भी, मैं जल्दी ही दूसरा इन्तजाम करता हूँ ...।'

'फिर लौटा दीजिए यह दवाई उन्हें। डाक्टर होकर भी अगर वे जहर दे रहे हैं तो क्यों रखी जा रही है ये गोलियाँ ? हां, ले जाइये इन्हें ...'

मेधा किसी मुर्गी की तरह चिल्ला रही थी। सहसा मुझसे कोई जवाब देते न बना। कुछ सोचकर मैंने कहा, 'अच्छा लौटा दूँगा। इस समय वे सो रहे हैं; सवेरे दे दूँगा। हां, इस समय न देना भूल कर भी। मुझे उन पर जरा भी विश्वास नहीं है। मैं नीचे जा रहा हूँ, कोई न कोई इन्तजाम जरूर करूँगा, तब तक धैर्य रखो ....'

मैं अपने ड्राइवर का पता लगाने नीचे गया। काउन्टर इन्चार्ज या चौकीदार को उसके बारे में पता नहीं था। मैं वहाँ देर तक व्यर्थ ही इन्तजार करता रहा उसका। वह आ भी जाता तो इस समय डाक्टर की तलाश में कहीं जाना उचित नहीं है, यह सभी ने कहा। मैं देर इसलिए भी लगा रहा था कि इस बीच शायद लड़के का दस्त बन्द भी हो जाये। क्रोध बेवकूफी और मजबूरी की हालत में इस तरह से आश्वासन और सन्तोष कैसे मिल जाता है ?

मैंने अपने कमरे में बहुत देर बाद पहुँच कर मेधा से लड़के की हालत के बारे में पूछा तो उसने मुस्करा कर कहा, 'बाबू सोये हैं। आपके जाने के बाद एक दस्त हुआ था, उसके बाद नहीं हुआ। आराम है।'

'गोली-वोली तो नहीं दी'

'नहीं तो ....।' मेधा दूसरी ओर देखती हुई धीमी आवाज़ में बोली।

लड़का अच्छा हो गया। लड़ाई की खबर सुनकर काठमांडू जाने का उत्साह भंग हो गया। हम दूसरे दिन घर लौट चले।

कुछ दूर जाने पर मैंने कहा, 'यह अच्छा हुआ कि अभिषेक को गोली नहीं दी गई। पता नहीं वह गोली कैसी थी, उसमें क्या था।'

मेरी बात पर मेधा, नमिता और अभिषेक ने एक-दूसरे की ओर चौंक कर देखा, फिर उनके होठों पर मीठी मुस्कान उभर आई।

●●●

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

◆ स्वयं प्रकाश

प्रौढ़ शिक्षा

सुनने में बात अजीब लग रही है, लेकिन है सही कि सदानंद मास्टर के पंद्रह वर्षीय बेटे बबलू को कस्बे के सरकारी डॉक्टर माथुर की सोलह वर्षीया बिटिया अलका से मुहब्बत हो गई। पता नहीं चला कि हो गई। पर हो गई। बबलू और अलका एक ही स्कूल में थे और एक बार जब गाय ने सींग मारकर अलका को साइकिल समेत गिरा दिया था, बबलू ने न सिर्फ उसे साइकिल-किताबों समेत उठाया था, बल्कि यह भी कहा था, "देख के चला करो ना !" वह कहना तो यह भी चाहता था ..... बल्कि डांटना चाहता था कि ... लेकिन अलका के घने बाल, काली आँखें, छोटी-सी नाक, गोल-गोल होंठ, नई काट का चमचमाता कुरता-पाजामा और उसक रुआंसापन उसे कहीं खुंभकर रह गया, चला आया, उसके बाद लगभग एक महीना दोनों की निगाहें स्कूल में एक-दूसरे को ढूंढती रहीं... नजर आने पर खिल उठते, निगाहें मिलने पर बेसाख्ता मुंस्कुरा पड़ते, पर कुछ सूझता नहीं-क्या बोलें ... अपनी-अपनी कक्षा में चले जाते .... और एक-दूसरे के नशे में डूबे रहते।

बबलू अब यथाशक्ति चकाचक रहने लगा और यदि किसी दिन अलका नहीं दिखाई देती तो वह चिड़चिड़ा और अन्यमनस्क हो जाता और खामखां किसी से लड़ बैठता।

उन्हीं दिनों बबलू ने एक फिल्म देखी जिसकी हीरोइन दिव्या भारती थी और ताज्जुब कि उसे दिव्या भारती एकदम अलका माथुर जैसी लगीं। हूबहू। और अलका माथुर एकदम दिव्या भारती जैसी। रात में सपने भी ऐसे ही आने लगे। पता ही नहीं चलता कि दिव्या भारती है या अलका माथुर।

छह-सात महीनों में बात यहाँ तक आ गई कि बबलू घंटों अलका के घर बैठा रहता वह उसे क्या-क्या खिलाती, अंग्रेजी-हिंदी रेकॉर्ड सुनवाती, दोनों रेकॉर्ड बजाकर डांस भी करते और एक-दूसरे से अर्थहीन छोटी-छोटी बातें, छेड़छाड़ और खुशगप्पियां करते हुए निरंतर मुस्कराते रहते, बीच-बीच में स्कूल और पढ़ाई की भी कुछ बातें

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

करते। कभी छू भर जाती अलका तो वह छुअन काफी-काफी देर बबलू के शरीर पर चिपकी रहती।

लेकिन उस साल बबलू फेल हो गया। और अलका पास। और बबलू घंटों तकिए में मुँह गड़ाकर रोता रहा। सदानंद मास्टर धीरज बंधाते कि कोई बात नहीं, और मेहनत करेगा तो अगले साल जरूर फर्स्ट डिवीजन आएगा मनुष्य का कर्तव्य है कि ... मास्टर साहब को क्या मालूम कि बबलू का क्या टूट गया है ?

स्कूल खुलने पर अलका से बचता रहा, एक दिन सामने ही पड़ गई। उसने सहानुभूति दर्शाई। बबलू चिढ़ गया। दोनों की दोस्ती में गांठ पड़ गई। नहीं बोलना है। बस, अलका से कोई मतलब नहीं रखना है बस, खत्म।

बहुत दिनों तक अपनी अलकाविहीन दिनचर्या बबलू को दुखी करती रही। बहुत दिनों तक अलका उससे बात करने की कोशिश करती रही। वह कक्षाएं पूरी हो जाने के बाद भी एक सहेली को साथ ले, बबलू के क्लासरूम के बाहर खड़ी रहती। शाम बिना काम खेल के मैदान जाती—जहां बबलू दोस्तों के साथ क्रिकेट खेल रहा होता—इस उम्मीद में कि बबलू उसे एक बार देख ले, बात कर ले, बस सिर्फ यह बता दे कि अलका से क्या गलती हो गई जो वह नाराज है। पर हर बार होता यह कि और सब उसे देख लेते, सिर्फ बबलू ही नहीं देखता। देखकर भी अनदेखा कर देता और दूसरे रास्ते से निकल जाता, स्कूल में लड़के-लड़कियां उनके बारे में बातें करते। बबलू के दोस्त कहते—बबलू ! अलका माथुर तेरा इंतजार कर रही है। बबलू बाएं हाथ से माथे के बाल पीछे फेंकते हुए कड़वा-सा मुस्कराकर कहता—खामखां पीछे पड़ी है यार ! कोई और यही बात बबलू के सामने कहता तो शायद बबलू उसे पीट देता।

अलका की क्लास की एक सांवली-सी लड़की कौशल्या बबलू के घर के पास ही रहती थी। अब तक अलका और कौशल्या की बोलचाल तक नहीं थी। लेकिन अचानक उनमें दोस्ती हो गई और खूब गहरी, और अलका रोज कौशल्या के घर आने लगी, और वह दो घंटे वहीं रहती और दोनों भीतर भी नहीं जातीं, वहीं बगीचे में खड़ी-खड़ी बातें करती रहतीं, और अलका की नजर बबलू के मकान पर ही लगीं रहती।

इस दौरान बबलू अगर घर से बाहर होता तो रास्ते से ही अलका को कौशल्या के बगीचे में खड़ा देख साइकिल पलटा देता और कहीं और चला जाता या यों ही सड़कों पर घूमता रहता, और यदि घर में होता तो किताब लिये बैठा रहता और बंद खिड़की की सेंध से कौशल्या के मकान की तरफ देखता रहता और दांत पीसता रहता। किसी काम के लिए कहीं जाने को कहा जाता तो या तो टालता रहता, पढ़ाई का बहाना बनाता और या साइकिल उठाकर इतनी तेजी से भागता जैसे कहीं आग लग गई हो।

एक बार अकेले में कौशल्या ने कहा, "बबलू ! तू अलका से बातं क्यों नहीं करता ?"

बबलू शायद इस प्रश्न की प्रतीक्षा कर रहा था। मुंह कड़ा करके बोला, "तू अपना काम कर, मेरे मामले में टांग अड़ाने की जरूरत नहीं।"

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

फिर एक बार और कौशल्या ने कहा, "बबलू ! तू अलका से बात नहीं करेगा तो मैं तेरी मम्मी को बता दूंगी सारी बात।"

इस पर बबलू बोला, "टंगड़ी तोड़ दूंगा तेरी दोनों। समझ गई ? स्कूल आना भुला दूंगा।"

फिर एक और दिन कौशल्या के यहां अलका नहीं, कोई और लड़की खड़ी थी और कौशल्या बबलू को सुनाकर उससे कह रही थी, "मैं क्या करूं बता ? इसका तो दिमाग ही नहीं मिलता और वो महारानी, इसके गम में अनशन किए बैठी है, अब भई, हमसे तो नहीं उठाए जाते इतने नखरे किसी के ।"

ऐसी बातों से बबलू का दुख और दुविधा और बढ़ जाते।

साल ऐसी ही गपड़-सपड़ में निकल गया। उस साल बबलू पास हो गया, ग्रेस मार्क से। लेकिन अलका भी पास हो गई, फर्स्ट डिवीजन।

बबलू इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि उसकी किस्मत ही खराब है। पूरे साल अपने आपको और अलका को सताकर भी क्या मिला ? ग्रेस ?

अलका पास हो गई, वह फेल हो गया यह अलका की गलती है। अलका का फर्स्ट डिवीजन आया, वह ग्रेस से पास हुआ। यह भी अलका की गलती है। उसने इतनी गहराई से मुहब्बत की ही नहीं, जितनी बबलू ने उसी के कारण बबलू का रिजल्ट बिगड़ा। सब लड़कियां मतलवी होती हैं। एक नजर मुहब्बत पर रखती है, एक नजर रिजल्ट पर। जबकि बबलू को फर्स्ट डिवीजन की कितनी जरूरत थी ! अलका ग्रेस से पास हो जाती तो उसका क्या बिगड़ जाता ? कॉलेज में एडमीशन तो मिल ही जाता। बाप डॉक्टर है। पैसा भी खूब है। डिग्री भी मिल ही जाती। शादी भी हो ही जाती। बच्चे भी हो ही जाते। इनमें कहां फर्स्ट डिवीजन मार्क्स की जरूरत है ? लेकिन बबलू क्या करेगा ? कॉलेज में एडमिशन नहीं मिला तो बबलू क्या करेगा ?

किस्मत ही खराब है। वरना क्यों ऐसा होता कि जोशी मट्साव के बताए इंपार्टेन्ट्स में से एक भी नहीं आता ! और फिर भी ऐसा खराब तो नहीं गया था पेपर, दो मार्क्स ! क्या होते हैं दो मार्क्स ! किस्मत ही खराब न होती तो पिछले साल भी क्यों फेल होता ? क्यों पूरा साल उसे गवाना पड़ता ? क्या छोटे-छोटे छोकरों के साथ बैठना पड़ता ? अध्यापकों के उपहास का पात्र बनना पड़ता ? खेलकूद, भाषण, एनसीसी, सांस्कृतिक कार्यक्रम कहीं भी जाते समय ... यहां समय नष्ट न कर पढ़ाई में मन लगाने का भाषण क्यों सुनना पड़ता हरेक से ? क्यों अलका और उसके घरवालों की नजर से गिरना पड़ता ? क्यों कॉपी-पेंसिल-शर्ट-पिकनिक किसी के भी लिए पापा से पैसे मांगने से पहले दस बार झिझकना पड़ता ?

पूरे साल उसने एक भी कपड़ा नहीं सिलवाया। एक भी पिक्चर नहीं देखी। एक भी पिकनिक पर नहीं गया। एनसीसी कैंप नहीं गया। एक भी प्रतियोगिता में भाग नहीं लिया। पूरे साल वह पिछले साल की कॉपियों के खाली पन्नों पर रफ वर्क करता रहा और इस-उस दोस्त से रबड़-पेंसिल-परकार-स्केच-पेन मांगकर काम चलाता रहा। पूरे साल उसे दोस्त लोग रिसेस मे चॉकलेट-अमरूद-आलूबड़े-मूंगफली खिलाते रहे।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पूरी सर्दी वह बगल से फटा स्वेटर पहनता रहा। पूरे साल जूतों के तले में कील गड़ती रही या पांव जलते-ठिठुरते भींगते रहे। एक बार तो वह एनसीसी की निकर तक पहनकर स्कूल गया। जबकि और कोई भी आता है निकल पहनकर .... ?

और इस सारी तपस्या का फल क्या निकला ? क्या वह पढ़ाई में खूब मन लगा सका ? क्या होमवर्क में उसे 'गुड' या 'वेरी गुड' मिलता रहा ? क्या उसकी साइकिल में हवा अपने आप भर गई ? क्या उसे अलजेबरा ज्यादा अच्छी तरह समझ में आ गया ? वह फर्स्ट आ गया ? नहीं ..... हुआ सिर्फ यह कि वह बार-बार अलका की गली तक जा-जाकर लौट-लौट आता रहा। बार-बार टॉकीज में जाकर पोस्टर देखकर आ जाता रहा।

बार-बार बुलू और कमअकल छोकरों को खेलकूद-भाषण-सांस्कृतिक कार्यक्रम सबमें फर्स्ट आते देखता रहा। कूड़ा रचनाएं स्कूल मैग्जीन में छपते, कूड़ा नाटकों को मंचित होते, कूड़ा छोकरों को अध्यापकों द्वारा शाबाशी दिए जाते और मॉनीटर बनते या सार्जेंट बनते या प्राइज उठाकर घर ले जाते देखता रहा, बार-बार अलका को उसकी निगाहें ढूंढती रहीं.... और बार-बार वह अलका से छिपकर भागता रहा, हर बार किताब में अलका के कान के झुमके हिलते रहे ... हर बार अलका के सामने पड़ते ही अपनी मार्क्ससीट याद आती रही .... हर बार हंसते-हंसते सहम जाता रहा ... गुस्सा करते-करते रुआंसा हो जाता रहा .... चिल्लाते-चिल्लाते फुसफुसा जाता रहा .... बोलते-बोलते गुमसुम हो जाता रहा। गाते-गाते चुप हो जाता रहा ... और परीक्षा हॉल में हमेशा की तरह शेर की तरह नहीं, चोर की तरह घुसा, पूरा मालूम होने पर भी नर्वस होता रहा, अच्छी लिखावट होने पर भी काट-पीट करता रहा, धाराप्रवाह लिखने का अभ्यस्त होने पर भी हाथ को थरथराता महसूस करता रहा, आसपास वालों के बार-बार चौंकने पर भी बार-बार पानी पीता रहा, टीपने का शक होने का डर होने पर भी बार-बार पेशाब करने जाता रहा .... और आखिर ग्रेस मार्क्स से पास हुआ, ग्रेस ! या डिसग्रेस ?

सदानंद मास्टर ने मार्क्सशीट देखकर लंबी-सी सांस ली, ठंढी-सी आवाज में 'शाबाश'' कहा और उठकर चले गए और बगीचे में लगी भिंडी की क्यारी में से खर-पतवार साफ करने लगे। इससे तो चिल्ला पड़ते ! थप्पड़ मार देते ! धक्का दे देते! पर नहीं, बबलू की इंसल्ट करने में सबको मजा आता है। किस्मत ही खराब न होती तो ऐसा क्यों होता ?

काश ! कभी किसी अध्यापक ने उसे बुलाकर यही पूछा लिया होता कि बबलू, क्या बात है ? आजकल इतने खोए-खोए से क्यों रहते हो. ? आज सिर में तेल क्यों नहीं डाला ? इस बार कल्चरल प्रोग्राम में भाग क्यों नहीं ले रहे हो ? एनसीसी कैंप में क्यों नही गए ? बबलू, कुछ प्रॉब्लम हो तो बताओ, किसी से झगड़ा हो गया क्या ?

या काश ! कोई उससे यही पूछ लेता कि अलका से झगड़ा क्यों कर लिया ? उसे और अलका को आमने-सामने बैठाकर सारी बात सुलझवा देता ! और कुछ नहीं तो यही कह देता कि बबलू, तुम बहुत शहीन और होशियार लड़के हो, एकाध । बार की असफलता से कुछ नहीं होता देखना .... तुम बहुत आगे जाओगे।

लेकिन नहीं। कोई क्यों करता ऐसा ? कौन लगता है वह किसी का ? बबलू

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मर भी जाए तो इनको क्या फर्क पड़ेगा ? वे तो उलटे कमजोर छोकरों को फर्स्ट आने पर उनकी पीठ ठोकेंगे, और बबलू को बुलाकर हमेशा भाषण पिलाएंगे, "बबलू, तुम तो बहुत इंटेलिजेंट थे ! फिर फेल कैसे हो गये ? पढ़ाई ठीक से नहीं की होगी, है न ? हमें तो तुमसे बहुत आशाएं थीं। अब छोड़ों भई ये खेलकूद, नाटक, तमाशा... और पढ़ाई में मन लगाओ। क्या ? सोचो, बेचारे सदानंद मा'ट्साब को कितना बुरा लग रहा होगा।"

मानो बबलू सिर्फ पापा को सताने के लिए जान-बूझकर फेल हो गया हो ! मानो उसका पास होना उसके खुद के लिए कतई जरूरी न हो, दूसरों का अनुमान सही निकले—सिर्फ इसलिए जरूरी हो। कोई नहीं समझेगा। उसकी किस्मत ही खराब है।

परदुखकातर कौशल्या से आखिर रहा नहीं गया और उसने बबलू की मम्मी को सारी कथा सुना दी। बबलू कहीं गया हुआ था। उसके लौटने से पहले ही मम्मी और सदानंद मास्टर डॉक्टर माथुर—वर्तमान प्रसंग में 'अलका के बाप'—के यहां जाने के लिए तैयार हो गए, लेकिन ताला लगाते-लगाते उसका निर्णय बदल गया कि जब अपने सिक्के में ही खोट हो तो दूसरों से क्या कहें ! अचानक उन्हें मेरा ध्यान आया और वे मेरे पास आ गए। मैं बबलू का दोस्त हूं। हालांकि उम्र में उससे तीस बरस बड़ा हूं, पर उम्र हमारी दोस्ती में कभी खास आड़े नहीं आई। पिछले दो साल से में बंबई मे था और आज ही लौटा था।

दम लेते ही बबलू की मम्मी शुरू हो गईं। कौशल्या से सुनी पूरी कथा सुनाने के बाद बोली, "अब भैया, तुम ही उसे समझा सकते हो। हमसे तो वो सीधे मुंह बात भी नहीं करता है आजकल।"

"...क्या समझाना है ?" मैंने पूछा।

मम्मी को आश्चर्य हुआ ? कैसा आदमी है ? पूछ रहा है क्या समझाना है ? बोली, "अब तुम ही सोचो ! कोई बात है ? अरे, इस उमर में उसे पढ़ाई की जरूरत है या प्यार-मुहब्बत की ? पागलपन कर रहा है। जिंदगी बिगाड़ रहा है।"

मैंने कहा, "बबलू और अलका एक-दूसरे के प्रति आकर्षित होते हैं तो क्या आपको ऐसा लगता है कि कुछ अप्राकृतिक बात हो रही है ?"

बोलीं, "अरे, पर भैया कोई उमर है उसकी ये सब करने की ?"

मैंने कहा, "आपके हिसाब से बबलू को अलका से प्यार करने के लिए क्या उम्र ठीक रहेगी ?" यथासंभव स्वर सहज था, पर व्यंग्य खुल गया। अचानक उन्हें ध्यान आया कि मैं उनका नहीं बबलू का दोस्त हूँ और उन्हें मुझको अपने पक्ष में करना है, आज और इसी वक्त।

बोली, "नहीं, हम ये नहीं कहते कि कुछ मत करो, पर पहले जरा लिख-पढ लो, अपने पैरों पर खड़े हो जाओ, फिर मर्जी आए जो करो, सारी उम्र पडी है।"

अब इस बात का मैं क्या जवाब देता ?

लेकिन एक बात जरूर हुई। उस दिन से मैं प्रौढ़ शिक्षा का प्रबल समर्थक हो गया।

●●●

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

◆ संजीव

भूखे रीछ

साढ़े–पाँच का सायरन सुनते ही रामलाल के दातौन की रफ़्तार तेज हो जाती है। दातौन फाड़कर 'ओ-ओ' करते हुए जीभ साफ़ करके बंगले के फ़ालतू नल पर दो-एक कुल्ली करने के बाद हर-हर गंगे, हर-हर गंगे करता हुआ नल के नीचे नहाने बैठ जाता है। फिर देह का पानी पोंछे बिना ही बसाती बनियान पर कालिख-पुती कमीज़ डालकर बेडौल पतलून-जूते से लैस होकर आवाज़ लगाता है, रज्जोऽऽ ! रज्जोऽऽ ! अरी ओ तुरकानी, आज फिर लेट करायेगी क्या !"

अल्युमीनियम के गिलास में चाय और टिफ़िन-कैरियर में खाना लेकर आती हुई रजिया इस सम्बोधन पर सवेरे-ही-सवेरे भीतर तक ऐंठ उठती हैं। चाय थमाकर आँचल से टिफ़िन-कैरियर की छलकी दाल पोंछते हुए आँखें छलक आती हैं, "बोलूँगी, तो कहेगा सवेरे-सवेरे जातरा खराब कर दिया। बोल ले, मरद है न ! देखती हूँ कित्ती मर्दानगी दिखाता हैं ? मूजले पाँच हजार कह गये हैं।"

रजिया का यह ताना भी वह चाय के साथ सुड़क तो जाता है पर बिना दूध के कसैले लीकर-सा वह मुंह को कसैला बना जाता है। छह की सायरन की हुहुँआहट शुरू हो रही है और बिना कोई जवाब दिये वह दौड़ पड़ता है, कारखाने के गेट पर। छह बजकर पाँच मिनट पर गेट बन्द हो जायेगा।

क्रेन पर बैठते ही मुँह का कसैलापन फिर उभरने लगा है, "सालों की नाक आदमी की है या कुत्ते की ! कितनी जल्दी सूंघ लिया लड़की के खोट को !......परज़ात तो परज़ात...अरे राम-राम कहो, मुसलमान औरत की बेटी है ! पाँच हज़ार से कम पर तो यह ज़हर नहीं पीया जा सकता भाई !"

पाँच हज़ार ! इतनी रक़म एक साथ ठाकुर पिरथीपाल सिंह ने भी न देखी होगी जो हमेशा उसके जैसे हलवाहों को मजूरी में किनकी, कोदो या सावाँ देते रहे,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

और जिनके चलते अपना हरा-भरा गाँव, गंगा का किनारा, आमों के बग़ीचे सबसे देश-निकाला हो गया और भागकर इस धूल-धक्कड़, धुएँ और शोर से भरे कोलियरी अंचल में सर छुपाना पड़ा। उँह ! बात यहीं तक होती तो कोई चारा था। मास्टर के कहने पर उसने इस मुसलमान लड़की से शादी भी तो कर ली !.... और पन्द्रह साल पहले की एक लिजलिजी रात कौंध गयी ज़ेहन में.....

उसकी रिस्क़ू पार्टी को पता चला था कि मिल्ट साहब के बंगले में एक 'केस' है। कोई दलाल किसी ज़रूरतमन्द आदमी की लड़की लिवा लाया है। रामलाल, बिहारी और मास्टर के दूसरे सहयोगियों ने धावा बोल दिया। किवाड़ लात मारते ही खुल गयी थी। मिल्टन साहब की तो वो मरम्मत की गयी थी कि उसका गोरा चेहरा लाल हो चला था और दलाल को तो पाँच जगहों पर दाग़कर ही दम लिया था बिहारी ने। रामलाल ने कमरे के कोने में देखा तो एक जवान लड़की नंगे बदन सिमटी जा रही थी। उसने अपना गमछा फेंक दिया तन ढकने के लिए। लाख समझाने-बुझाने पर भी वह लड़की अपने घर जाने को तैयार न हुई तो मास्टर ने रामलाल को ही वह लड़की सौंप दी क्योंकि उतने लोगों में वही एक ग़ैर शादीशुदा था। मगर सात दिनों के बाद उस लड़की को लेकर रामलाल को फिर से मास्टर के पास आना पड़ा।

"ग़ज़ब हो गया मास्टर ! अरे यह तो मुसलमान है !"

"चलो खैर ! सात दिनों बाद तुम्हें इसका पता तो चला !" मास्टर ने व्यंग्य किया।

"यह तो नाम पूछने पर इसने बताया कि इसका नाम रजिया है।"

"पानी पीकर जात पूछने चले हो ! भूल जाओ कि इसका नाम रजिया है।" लेकिन वह कहाँ भूल पाया इस बात को ! बिरादरी से बहिष्कृत हुआ। गाँव का आना-जाना छूटा। इस पर तुर्रा यह कि नौ महीने के अन्दर ही जो पहली सन्तान पैदा हुई वह लड़की थी—इतनी गोरी-चिट्टी कि रामलाल के खानदान-भर में न रही होगी और रामलाल उसे अपनी नहीं, मिल्टनवाँ की बेटी कहता है। पता नहीं, इस खोट पर लड़की वालों की नज़र गयी कि नहीं, अगर गयी तो बोली और ऊपर चली जायेगी।

"अरिया ! अरिया !! (नीचे करो)..... अबे सो गया क्या ?" चीखता है बिहारी टंडइल (टिंडल) नीचे से ! वह अरिया करता है क्रेन को।

"हाबिस ! (ऊपर करो) उस शिफ़्ट वाले साले ऊपरटैम मारकर चल दिये। माल्ड बॉक्स से पूरी गैन्ट्री जाम करके रख दी अपने बहनोई लोगों के लिए। साफ़ करो, साफ करो ! बड़ा साहब चेकिंग के लिए आ ही रहा होगा।" और रामलाल का क्रेन घड़घड़ाने लगता है।

काम ! काम !! काम !!! काम करते-करते उसकी जिन्दगी भी एक मशीन बनकर रह गयी है। मास्टर एक दिन कह रहा था, "इस मशीन को ठीक से तेल-चर्बी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पिलाते रहो, वरना जिस हिसाब से यह आठ घंटे ड्यूटी और चार घंटे ओवरटाइम चला करती है जल्द ही 'इस्किराप' हो जायेगी और सालवेज डिपार्टमेंट भेज दी जायेगी।" वह यह सोचकर घबड़ा जाता है। नहीं-नहीं, वह इस्किराप नहीं होना चाहता। लेकिन दूसरा उपाय ही क्या है ! ऊपरटैम (ओ० टी०) के पैसे न मिलें तो खर्च चले कहाँ से और एफ़० एस० (फाउन्ड्री सुपरिंटेंडेंट) के बंगले की रखवाली न किया करे तो रहे कहाँ ? उनके सर्वेन्ट्स क्वार्टर में रहने से घर-भाड़े की तो बचत हो जाती है। पाँच-पाँच खाने वाले हैं और घर को जो पैसे भेजने पड़ते हैं, सो अलग !

ऊँह ! मास्टर को तो हर चीज़ में खोट नज़र आती है। कहा करता है, 'ऊपरटैम' मजूर को नीचे गिराती है, फिर ऊपरटैम का भरोसा ही क्या ! यह तो नक़ली आता है। हमें तो असली टाँग चाहिए यानी ग्रेड ! नहीं ! अब वह मास्टर के झाँसें में आने वाला नहीं है। उसकी आँखों में वे आन्दोलन के दौर झिलमिला उठते हैं जब मास्टर ने नयी-नयी यूनियन खड़ी की थी और उसकी एक ही हाँक पर मशीनों के चक्के अचल हो जाया करते और लैडिलों में गला लोहा जहाँ-का-तहाँ पड़ा रह जाता। लेकिन क्या मिला मास्टर को?

आन्दोलन-वान्दोलन सब फ़ालतू बातें हैं। साहब लोग कौन-सा आन्दोलन करते हैं ? कित्ते पैसे पाते हैं ! कित्ते ठाठ से रहते हैं। तीन-तीन बार पगार बढ़ चुकी है उनकी। ठेकेदारों से या इधर-उधर से जो खाते हैं सो अलग ! इधर हम साले मज़दूर इस्टराइक करते हैं, धरना देते हैं, कुत्तों की तरह छीना-झपटी करते हैं, ऊपरटैम, परमोसन, क्वाटर के टुकड़ों पर दुम हिलाते हुए साहबों के पीछे-पीछे चलते हैं फिर भी पेट नहीं भरता !

उसने भी दस-बारह साल मास्टर की बात मानकर देखी ली। भला जो आदमी लीडर होकर अपनी टंडइली तक नहीं ले सका, वह भी कोई लीडर है ! देखो बिहारी को, मास्टर का साथ छोड़े तीन ही साल बीते हैं और इन तीन सालों में क्या नहीं है उसके पास-टंडइली, क्वाटर, पेंसल, ऊपरटैम, दो-दो आदमी तक भरती करा चुका है अपने !

दस का सायरन सुनकर अपने रिलीवर फ़िलिप को क्रेन सौंपकर टिफ़िन-कैरियर खोलकर एकान्त में खाने बैठा है रामलाल ! रोटी के कौर के साथ-साथ रस ले-लेकर पुरानी बातों को भी चबा रहा है। बिहारी की बदौलत ही तो उसे एफ़० एस० का सरवेन्ट क्वार्टर मिला है वरना वह भी तो मास्टर की तरह डुमरैया मुहल्ला की किसी बदबूदार गली में नोनछा झरते सीलन-भरे घर में सड़ रहा होता। रोज़ सुबह-शाम नल पर पानी के लिए सर-फुटौवल करनी पड़ती। डी० सी० लाइन की तपेदिक-सी बीमार बिजली, ऐसी कि लालटेन जलाओं तो मुँह सूझे सामने वाले का। और यहाँ.....! चार–चार फालतू नलें ! बीघें-भर की फुलवारी ! रात को भी दिन बनाये हुए मुफ़्त की बिजली के ढेर सारे बल्ब !

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अब बताओं किसे उम्मीद थी कि इतना अच्छा पोडक्सन (प्रोडक्शन) होने पर भी कम्पनी बोनस देने में लाचार हो जायेगी और ग्रेड के नाम पर यूनियनों को घूस-पानी देकर टाल-बहाना करती रहेगी। बिहारी की तरह बुद्धि है तो बोनस और ग्रेड की रक़म फ़ालतू ऊपरटैम बनाकर वसूलते रहो, लटकाये रहने दो यूनियन और 'मैनिजमेंट' को बोनस और ग्रेड का फ़ैसला टिरबुनल में !

सिर्फ़ ईमानदारी लेकर चाटने से पेट नहीं भरता। क्या हासिल कर पाया मास्टर ! ओह ! उस बार जब वह गेटपास देने उसके घर गया तो दरिद्रता देखकर चकित रह गया। सीलन ओर बदबू ! बोरे के पर्दे के पीछे केवल साया पहनकर कपड़े साफ़ कर रही थी और बदलने को शायद नहीं था कुछ। मास्टर टूटे हैण्डल वाले कप में चाय ले आया तो रामलाल ने वहाँ बिखरी मोटी-मोटी किताबों और छितराये काग़ज़ के पन्नों को देखकर पूछा, "इत्ती मोटी किताबों की दुनिया में भटकते हुए बुढ़ा तो गये मास्टर, मगर कुछ भी मिल सका ?" वहीं मास्टर ने एक कविता सुनायी थी उसे !

हाथ-मुँह धोकर रामलाल अपने गेटपास की बग़ल में तह बनाकर रखे हुए उस काग़ज़ को निकालता है और जगेसर को बीड़ी का एक घूस देकर पढ़वाता है। बीड़ी का एक ज़ोरदार कश लेने के बाद वह कविता सुनने के पूरे मूड में आ गया है।

...मेरी बैलगाड़ी का गाड़ीवान/पेट में टाँगें सिकोड़े बेखबर सो रहा है/जाड़े की इस लम्बी वीरान रात मे/और बैल चुपचाप बढ़े जा रहे हैं/जानी–पहचानी लीक पर/गले की घंटियाँ बजती हैं/और सपनों की तरह कुहरे भरी धूसर चाँदनी मे/एक थरथराहट/सुगबुगाकर अचल हो जाती है पारे की तरह......

आगे की पंक्तियाँ कान के परदों पर निरर्थक दस्तक देती हैं। वह तो कब का अपने ठटवारी (चाकरी) के गुज़रे दिनों में पहुँच जाता है.... पिरथीपाल सिंह की गन्नों से लदी बैलगाड़ी, मिल की लीक पर बढ़े जा रहे बैल, दूधिया चाँदनी में बजती हुई बैलों की घटियाँ और गठरी बना खर्राटे लेता हुआ वह !

काग़ज़ मोड़कर गेटपास के पास जेब में रखता है और अब बिना खैनी खाये उसके मुँह में कड़वाहट घुल रही है...ओह ! अब तो वह बैलगाड़ी ठमकने लगी है मंज़िल पर पहुँचे बिना ही : ऊपरटैम की नक़ली टाँगें भर-भराकर गिरने लगी हैं। नये सरकुलर के मुताबिक़ अबसेन्टी छोड़कर दूसरा ऊपरटैम नहीं होगा। मज़दूर इधर-उधर जमा होकर बात करते हैं, यूनियन क्या करती है ?....अजी मिली मार है मिली मार....!....सुनने में आया है, साहबों का वेतन अप्रैल महीने से सौ-सौ रूपये और बढ़ गया है और हमारा ग्रेड तो ग्रेड, ऊपरटैम भी हज़म कर गये साले...! हमारा कोई माई-बाप नहीं है इस दुनिया में ! सरकार भी उन्हीं लोगों की है, पुलिस और अदालत भी उन्हीं लोगों की, क़ानून भी उन्हीं लोगों की।

रामलाल को लगता है, नम्बरदार पिरथीपाल सिंह और सूदखोर बलदेव राय के बाद यह तीसरी गिरफ़्त है। वह एकाएक काफी कमजोर लगने लगता है। आर्कफार्नेस

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

का फ़ौलाद टेप हो चुका है लैडिल में। 'हाबिस' की आवाज़ के साथ ही चौंधियाता हुआ पिघला फ़ौलाद लिए मोल्ड बॉक्सों की ओर से जाते हुए चिनगारियाँ छुट रही है। टीम करते वक़्त झुलसाती आँच लगती है। लैडिल यथास्थान पहुँचाकर क्रेन से उतरते ही रामलाल को एक सवाल सूझता है, "मान लो किसी दिन इस लैडिल में गिर जाऊँ तो...?

"फ़ौलाद में मिल जाओगे और कोई गार्डर–वार्डर ढाल दिये जाओगे !" मास्टर बताता है।

"फिर...?"

"फिर किसी बलदेव राय की हवेली को कन्धा दिये खड़े रहोगे !"

"मेरा वश चले न मास्टर भाई, तो उस फ़ौलाद से तीन गोली बनायी जायें–एक पिरथीपाल सिंह के लिए, एक बलदेव राय के लिए और एक एफ़० एस० के लिए ! अगर ऐसा हो तो मैं अभी इसी वक़्त कूदने को तैयार हूँ।"

"ढालने वाले चाहें तो गोली भी बना सकते हैं मगर कोई ज़रूरी है कि तुम उनके सीने में ठुक ही जाओ? चलाना और चलवाना तो तुम्हारे अख्तियार में नहीं होगा। फिर यह क्या जरूरी है कि तुम उल्टे अपने बच्चों और साथियों को न भून बैठो?"

"हाँ, सो भी तो ठीक है !" और रामलाल उदास हो जाता है।

रात का खाना खाकर बंगले का एक चक्कर लगाकर बगान की सीमेंट की बैंच पर लेटा है रामलाल। हाई पावर का बल्व चुभता है आँखों में। बचने के लिए उसकी तरफ़ पीठ करके करवट से पड़ा है। सख्त बैंच चुभती है हाड़ में। 'क्वार्टर' में जाकर सोये तो साहब कल ही कहेंगे, "निकलो सरवेन्ट क्वाटर से !" फिर ढूँढना पड़ेगा डुमरैया मुहल्ला की बदबूदार गली का कोई नोनछा झरता सीलन-भरा मकान ! मच्छरों के काटने से टाँग खुजलाता है रह-रहकर। नींद नहीं आतीं। होठों की बीड़ी रह-रहकर दहकती है और खाँय-खाँय खाँसकर जहाँ-तहाँ बलगम थूककर गन्दा करता है। छाती में दर्द होता है। उसे लगता है, अब वह भी 'इस्किराप' हो जायेगा जल्द ही। जब आया था, चेहरा कैसा कसा हुआ था, बाल कैसे काले थे ! अब तो इस ढीले चेहरे और खिचड़ी बालों में वह चेहरा कब का खप चुका है। सिर्फ़ इस कारखाने ने उसके पन्द्रह साल निगल लिये हैं और बदले मे दिया है क्या ...? इस पन्द्रह साल के सफ़र में अभी तक ऐसा मुकाम नही आया कि कभी इत्मीनान से पेट भरने और तन ढकने की ज़रूरतों को पूरा कर सके। उसे उस सरकुलर की बात याद आती है जिसका पंजा कसता ही जा रहा था और कछुए की तरह फैलाव को अन्दर सिकोड़ने के बावजूद कुछ-न-कुछ चटखता और कुछ-न-कुछ पिचकता ही जा रहा था। बेटे की पढ़ाई छुड़वाकर बिना नौकरी लगवाये अब लाज बचने वाली नहीं है। इस प्रसंग पर अपराध-भावना से अन्दर-ही-अन्दर एक अजीब-सी बेचैनी में दिल डूबने लगता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एकाएक उसे कल के अपने पेमेन्ट की याद आती है--ओह, कल कित्ता काम है और वह ले बैठा है ऐसा महाभारत जिसका न आर है न पार !

सबेरे बौना वेतन लिए चला आ रहा है रामलाल। मन में थोड़ी आशंका है, थोड़ी राहत—सूदखोर बलदेव राय को चकमा देकर गेट तक सरक आने में सफल हो गया है।

"अबे उधर से काहे को भाग रहा है?"......हाँ, बलदेव राय की ही कड़कती आवाज़ है ! उसकी साँस ऊपर की ऊपर टँगी रह जाती है और पेमेन्ट के खाम पर गिरफ़्त कड़ी हो जाती है। बेटे की भर्ती के लिए घूस देने को क़र्ज लिये थे पाँच सौ ...आठ महीने पहले। आखिर अभी तक नौकरी भी नहीं मिली और क़र्ज है कि शेष होने का नाम नहीं लेता। चील-झपट्टे की तरह बलदेव राय का भयानक पंजा छीन लेता है खाम; पचास रूपये निकालकर हिकारत से फेंक देते हैं बाक़ी खाम का पैसा ! गेट के अन्दर एक करूण आक्रोश-भरी फ़रियाद कर रहा है रामलाल न जाने किससे—"सूदखोर लोगों को गेट के अन्दर ढुका लिया जाता है। सारे नियम—क़ायदे हम छोटे लोगों के लए ही हैं। ये 'वाचन वार्ड' लोग काँय को हैं....खाली इसलिए कि सरकार के हाथ में जाने से पहले कारखाने का सारा माल बाहर बेच दें !"....वह कुछ और बोलने वाला है मगर यह सोचकर सिटपिटा जाता है कि कहीं साले झूठी चोरी के इल्ज़ाम में फँसा दें तो...?

रास्ते में रक्षा काली के वध-स्थल को प्रणाम करता है, "रच्छा करों, रच्छा करो माँ ? अब लाज नहीं बचने वाली ! बंगले की चहारदीवारी के अन्दर प्रवेश करते ही उसे लगता है, माँ भी उसकी 'रच्छा' करने वाली नहीं है। उसकी 'मिल्टनवाँ की बेटी' फटा फिराक पहनकर पानी ले रही है नल से। एफ़० एस० का साँड़-सा लड़का उसे घूरता हुआ हँस-हँसकर बतिया रहा है।

घर के अन्दर कदम रखते ही उबल पड़ता है रामलाल, "तुम फटा फिराक पहनाकर इत्ती बड़ी लड़की को नल पर पानी के बहाने भेज देती हो उस साँड़ से बतियाने ? जैसे तेरा बाप तुझे रंडी बनाने चला था, वैसे ही तू भी बेटी को रंडी बनाने पर तुली हुई है?"

"ला दो न नया फ़िराक या साड़ी, बड़ी लाज लगती है तो ! इत्ती ही लाज होती तो अपना घर-द्वार लेकर रहने के बज़ाय किसी के बंगले के दरवाजे पर कुत्ते की तरह पड़े न रहते।" रजिया उसकी लाचारी को कुरेद बैठी है और फनफना उठा है रामलाल। लात-मुक्के बरस रहे है रजिया पर और वह रो पड़ी है ज़ोर-ज़ोर से। चिंघ्घाड़ रहा है रामलाल, "सब साली तेरे चलते हुआ ! ज़ात से कुज़ात हुआ रोज-रोज तेरे हाथ का खाना खाकर ! अपने आयी तो आयी, कोढ़ में खाज की तरह मिल्टन साहब का पेट लेते आयी ! साले पाँच हज़ार माँग रहे थे। पैसे ढालता हूँ कारखानवे में जैसे ! कहाँ से ले आऊँ और घुसेड़ दूँ उनके मूँ में.... ! साला, कारखाने में कोई मरता या

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बीमार भी नहीं पड़ता कि ऊपरटैम हो ...!"

धीरे-धीरे गाली का दायरा बढ़ता ही जा रहा है। मुँह से झाग निकलकर होंठ के दोनों कोनों पर बजबजा उठी है। यूनियन, अफ़सर सब एक-एक कर गालियों की चपेट में आते जा रहे हैं। रोते-रोते रजिया टोकती है, "बस, बस, रहने दे, रहने दे ! किसी ने सुनकर उलटा-पलटा लगा दिया तो सारी मर्दानगी चूतड़ों में घुस जायेगी !" रामलाल के होंठ खुले-के-खुले रह जाते हैं। हाँफता हुआ वह बन्द कटघरे में लकड़बग्घे की तरह टहलता है। दरवाजें पर साहब की नौकरानी को देखकर गुर्राता है, "हम तुमको बुलाया फ़ैसला करने को....? हमारा पिराइविट बात कोई साला काँय को सुनेगा....?

"मेरा साब तुमकू अभी कारखांना जाने कू बोला ऊपरटैम में। साब का फ़ोन आया है।" बताती है नौकरानी।

"अँऽऽऽ ! ऊपरटैम !" सारा क्रम उलट-पलट हो जाता है। ढीली मैली पतलून, बसाती कमीज़ और बेडौल जूतों से लैस होकर बाहर निकलता है, फिर अन्दर आता है, "देखो, गुस्सा न करना ! पता नहीं मेरे को क्या हो जाता आजकल...और हाँ ये पइसे रख तू ! खाना गेट पर ठीक साढ़े ग्यारह बजे भिजवा देना-नहीं तो कैन्टीन का कुत्तों का खाना खाना पड़ेगा !"

"बड़ा रहमदिल है भगवान !" डिपार्टमेंट में जाकर पूछताछ करता है..."कौन मरा ?...नहीं, मरा नहीं ! अस्पताल में है अभी ?...कौन ? ...अरे मास्टर ? हार्टटैक (हार्ट अटैक) ! पानी लेने में देर हुई थी नल पर...! दौड़ता हुआ गेट पर आया था ?... कम-से-कम तीन महीना...! हाय मास्टर !" क्रेन घड़घड़ाते हुए रामलाल सोच रहा है, अगर वह सरवेन्ट क्वाटर में न रह रहा होता तो कभी उसकी ड्यूटी नल पर पानी लेने में छूटती, हाँफता हुआ दौड़ता...फिर हार्टटैक...फिर...?

...नहीं... ! भगवान की दया से वह ठीक है। उसके पुराने दिन फिर से लौट चले हैं। तड़के जाता है, ऊपरटैम बनाकर देर से लौटता है। बीच-बीच में अस्पताल जाकर मास्टर की खोज—खबर लेता रहता है और आश्वस्त होता है कि कम-से-कम उसे ठीक होने में दो महीने तो लग ही जायेंगे और तब तक आठ घंटे ऊपरटैम।

रोज़-रोज़ आठ घंटे ड्यूटी, और आठ घंटे ऊपरटैम और साथ ही बंगले का छिटपुट काम करते--करते देह अकड़ने लगती है। मुद्दत के बाद साहब कहीं बाहर गया है। इस मौके का फ़ायदा उठाकर चोरी से आज घर में सोयेगा रामलाल !

कित्ते दिनों के बाद रात के ग्यारह बजे अपने घर और अपने परिवार को देख रहा है वह ! सबसे पहले नजर जाती है अपनी 'मिल्टनवाँ की बेटी' पर। उसकी जवानी देखकर डर जाता है रामलाल, "ओह भगवान, ऊपरटैम सलामत रखो। इस साल इस बला को किसी भी क़ीमत पर ठिकाने लगाना ही हैं। थोड़ी दूर पर सोया है उसका बेटा। बेटी कैसी पके फोड़े-सी ताज़ी और बेटा कैसा छुहारे-सा मरियल।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अंग्रेज और हिन्दुस्तानी की औलाद में इत्ता फ़र्क ! लेकिन वह कैसा पापी पिता है—न बेटी को कुछ दे पाता है न बेटे को ! एक छटाँक दूध भी तो मयस्सर नहीं होता ! 'मास्टर रोल' में नौकरी के लिए इतनी घूस-पाती दे रखी है और कही मेडिकल में ही छंट गया तो...?"

"सुनती हो... !" रजिया को आवाज़ दी।

"हूँऽऽऽ !" रजिया अलसाये स्वर में उत्तर देती है।

"इसके लिए कल से एक पाव दूध कह देना ग्वाले से !"

"जब हमेशा दे नहीं पाओगे तो काँय को आदत बिगाड़ रहे हो ?" रजिया के स्वर में झुँझलाहट की गन्ध है।

"मास्टर जब तक बीमार है, चला ही लूँगा। उसके ठीक हो जाने पर ही मुश्किल है !"

"तेरी जबान नहीं जलती मास्टर को अइसा बोलते हुए ? एक दिन पइसे के वास्ते तूँ मेरे कू भी बेच आयेगा।" उत्तेजना में उठकर बैठ गयी है रजिया।

"कहाँ ? ..... मिल्टन साहब के पास ! अंग्रेज मिल्टन चला गया तो क्या हुआ अपना देशी मिल्टन भी तो इसी बंगले में रहता है। दूर भी नहीं जाना पड़ेगा।" चिढ़ाता है रामलाल। "धत्त !" लजा जाती है रजिया। यादों की ढलान पर पन्द्रह वर्ष पीछे तक फ़िसलती जाती है। और जब लौटती है तो कृतज्ञता-बोध से स्वर मुलायम हो चुका होता है। गहरी आत्मीयता में गर्दन के गिर्द बाँहें डालकर पूछ बैठती है रामलाल से, "मगर तेरे कू नई लगता कि कहीं-न-कहीं कुछ-न-कुछ ग़लत होता रहा है?"

"देख, ज्यादा सोचने में ही झमेला है !" बड़ी मुश्किल से एक रात घर पर सो पा रहा हूँ ! इतना सोच देकर जी साँसत में न डाल !" और स्विच आफ़ हो जाता है।

सुबह अखबार की सुर्खियों की तरह पार्शियल लॉक-आउट क़ी खबर हवा में टँग गयी है, जो भी आँख दीखती है, पथरायी हुई दीखती है। ऑर्डर के अभाव में एक शिफ़्ट बन्द कर दी जायेगी। कौन बचेगा, कौन छँटेगा, बड़ी घबराहट और गहमागहमी है। गेट के ठीक सामने एक चोंगा बँधा है, "मैं पूछता हूँ, हमारा भी कोई माई-बाप है इस दुनिया में?" लोग मास्टर को पकड़कर माइक पर ले आते हैं। मास्टर बोल रहा है, "भाइयों, यह पार्शियल लॉक-आउट मज़दूरों को फोड़कर उन्हीं क़ो औज़ार बनाकर उन्हीं के भाइयों पर वार करना है और अपनी-अपनी नौकरी बचाने की हमारी आपसी छीना-छपटी पर मुझे एक कहानी याद आ रही है—सबसे उत्तर में एक देश है जहाँ साल के छह महीनों तक बर्फ़ जमी रहती है, उत्तरी ध्रुव का वाक़या हैं। वहाँ कुत्ते खींचते हैं घसीटने वाली गाड़ी। एक सैलानी परिवार ऐसी ही एक गाड़ी पर सैर कर रहा था कि वहाँ सफ़ेद रीछों ने गाड़ी का पीछा किया। जैसे ही वे क़रीब आये, परिवार के मालिक ने बन्दूक दाग़ी। एक रीछ मर गया और बाक़ी रीछ गाड़ी का पीछा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

करना छोड़कर अपने साथी को खाने में जुट गये। गाड़ी तब तक कुछ आगे निकल गयी। रीछों ने अपने साथी को खाने के बाद फिर गाड़ी का पीछा किया। एक बार फिर गोली चली, एक मरा और बाकी रीछ गाड़ी का पीछा करना छोड़कर उसे खाने में लग गये। उन्हें तो मांस से मतलब था, किसी का भी हो, क्योंकि वे भूखे थे और चेतनाशून्य !....तो मेरा अभिप्राय है कि हम सब भी भूखे रीछ हैं, दौड़ रहे हैं भूख से निजात पाने के लिए शोषण की गाड़ी के पीछे ! अगर व्यवस्था एक को भून दे तो हम सब–कुछ भूलकर उसी को खा जाने के लिए टूट पड़ते हैं, हम भूल जाते हैं कि निशाना हमारा गाड़ी है।" मास्टर एक क्षण को रूकता है, फिर बोलता है, "यह एक अन्धी दौड़ है भुक्खड़ों की जिसमें हम वक़्त से पहले बीमार हो रहे हे, वक़्त से पहले मर रहे हैं, मिट रहे हैं। हमें अफ़सोस उस सैलानी परिवार पर नहीं है, अफ़सोस तो उनकी गाड़ी खींचकर ले जाने वाले कुत्तों से है और अपने भूखे रीछों से है। तो भाइयो, हम यह प्रतिज्ञा करें कि काम पर जायेंगे तो सब, वरना कोई नहीं !"

संघर्ष का सातवाँ दिन है। दोनों तरफ़ से मोर्चाबंदी है। हवा है कि यह कारखाना पूरा-का-पूरा शिफ़्ट कर दिया जायेगा दूसरी जगह। वफ़ादार लोगों की सूची बन रही है, जिन्हें नयी जगह पर फिर से बहाल कर लिया जायेगा। प्रतिवाद में जुलूस निकल रहा है। हवा के रेशे-रेशे में तनाव है। रामलाल को बिहारी ने आश्वासन दे रखा है कि सूची में शामिल करने के लिए उसकी तरफ़ से वह साहबों से सिफ़ारिश करेगा। कहाँ बेटे की नौकरी की चिन्ता लगी थी, कहाँ अपनी ही नौकरी से हाथ धोने की नौबत आ गयी है। इधर 'मिल्टनवाँ की बेटी' की शादी की समस्या अलग है। सुना है, एफ़० एस० के लड़के से छुप-छुपाकर ज्यादा बातें होती हैं इधर। बताओ ! सालो, भगाना है तो लेकर भाग जाओ, कोर्ट में शादी बना लो, रोकने जाऊँ तो बोलना ! यह नामर्द की तरह रोज़ खुसुर-फुसुर क्या बतियाते हो...कहीं कुछ हो गया तो दो-दो हरामियों का बोझ ढोता रहूँगा ताज़िन्दगी ! और इस बीच कहीं नौकरी छूट गयी तो ?....पसीने-पसीने हो उठता है वह। कहाँ जायेगा फिर ? क्या करेगा वह? ज़िन्दगी तो इसी में खप गयी। कोई दूसरा हुनर भी तो नहीं आता उसे ! ठेकेदारी की मजूरी भी तो नहीं कर पायेगा वह। आज ही दो झूड़ी कोयला रामनगर कोलियरी से ले आया तो हड्डियाँ चटखाने लगीं और आँखों के आगे अँधेरा छाने लगा। उसे एकाएक खयाल आया अपने जलते हुए कोयलों की। उसने नज़र डाली तो धुआँ मर चुका था उनका। श्मशान की चिता की तरह दहक रहे थे अंगारे ! पता नहीं उसकी माटी कहाँ जलेगी। गाँव पर होगा तो गंगा के किनारे...नहीं-नहीं, नहीं जायेगा वह गाँव ! अपने ही दरवाज़े पर बामन-ठाकुरों के सामने खाट पर बैठना नहीं हो पाता वहाँ। अब तो इस माटी को गंगा नहीं, दामोदर ही बदा हैं।

लोहे की छड़ से कोयला इधर-उधर सरकाते हुए रामलाल जुलूस की आवाज़ पाकर चौकन्ना हो उधर ही देखने लगता है। मशालों की एक लम्बी क़तार ! उसी की तरह सताये हुए लोग। नारों की ताल पर तने हुए हाथ ! लेकिन उनमे वह क्यों नहीं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है ? एक अजीब-सी सनसनाहट !

"कोई बात हुई मेरे सिलसिले में ?" पूछता है रामलाल आतुरता से। गम्भीर हो जाता है बिहारी। कोई गड़बड़ी ज़रूर है। "नहीं ?" हकलाता है रामलाल, "तुमने बताया नहीं, मैं आन्दोलन में नहीं हूँ। देखो, न तो इस्टराइक में हूँ, न जुलूस में !"

उसकी घबराहट पर हँस देता है बिहारी, "तुम तो नाहक मरे जा रहे हो। तुम्हारी नौकरी तो पक्की है बल्कि प्रोमोसन भी साथ !"

"सच !"

"और नहीं तो क्या ! बस एक शर्त है, वह भी मामूली !"

"क्या? "

"वे साले भी कैसे घामड़ हैं ! मिल्टनवाँ की बेटी को तेरी बेटी समझते हैं ! ...तेरे लिए काफ़ी सुनहरा मौक़ा है। अरे, इसमें सोचना-विचारना क्या ! इस पोसी हुई बछिया की पूँछ पकड़कर वैतरनी पार करने में क्या हर्ज है?"

रामलाल को लगा कि वह संज्ञाशून्य हो गया है। पथरायी नज़रों से देखता है बिहारी को ! आँखें अचानक सुर्ख होने लगती हैं। यह कहना मुश्किल है कि उनसे आँसू टपक रहे हैं या खून ! होंठ फड़फड़ाते हैं मगर जबान नहीं फूटती। पन्द्रह साल पहले की तस्वीर कौंध उठती है ज़ेहन में ... एक लाचार बाप...एक लालच....एक लड़की...एक दलाल ! लीक में कैसे चल पड़ी है जिन्दगी ! मास्टर की बड़ी-बड़ी बातों का रहस्य खुलने लगता है। वह सर हिलाकर आत्मसंलाप कर रहा है।

"तो तुम हो सैलानी की ग़ाड़ी खींचने वाले कुत्ते !" वह बड़बड़ाता है। "क्या ? गाली बकता है साऽऽ..."बिहारी का वाक्य पूरा नहीं हो पाता है कि रामलाल के हाथ दनादन पड़ने लगते हैं उस पर। खून का प्यासा हो गया लगता है वह। अचानक कोयले में से गर्म रॉड उठा लेता है और चमड़े के जलने के साथ-साथ चीत्कारों में उसके गिनने की आवाज़ आती है–"एक, दो, तीन, चार, पाँच ! क्यों, पाँच ही बार तो दाग़ना पड़ता है दलाल क़ो बिहारी भाई !" पागलों की तरह वह हँस पड़ता है। एक मुक्त अट्टहास ! "घबराओ नहीं, मरोगे नहीं, सिर्फ़ पहचान के लिये ये दाग रह जायेंगे तेरे बदन पर, वफ़ादारी के दाग़ !"

तक़रीबन आधे घंटे बाद जब जुलूस बंगले के पास से गुज़र चुका होता है तो लोग चौंककर पीछे की ओर मुड़-मुड़कर देख रहे होते हैं। जुलूस में सबके पीछे-पीछे रामलाल का पूरा-का पूरा परिवार चल पड़ा है। बहुत सारे माल-असबाब से लदा-फदा ! आखिरी बार अपने 'क्वाटर' और अपनी लगायी फुलवारी पर नज़र डालते ही रातरानी की सुगन्ध की एक लहर नथुनों में भर उठती है और रामलाल बुदबुदा उठता है, 'उफ़ ! कितनी बदबू है यहाँ !"

●●●

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कथा-कॅमेंट्री

◆ ज्यॉ लुक गोदार

उने फ़ेम स्त उने फ़ेम

पलटा एक

पार्श्व : ज़ल्दी ! जमाओ, सब कुछ !

गोदार : एन्जेला तुरत बच्चा चाहती है। तमाम औरतों की तरह वह यकायक मार्सेइले जाना चाहती है, एक नयी-महँगी ड्रेस खरीदने के लिए, या चाकलेट एक्लेयर या कुछ ... एक आकस्मिक लालसा जिसे अधूरी छोड़ने की जगह वह मर जाना पसंद करेगी। जो कि मूर्खतापूर्ण है। पर वहाँ यह है एक औरत, औरत ही है और आखिरकार एक चौबीस बरस की लेडी के लिए चौबीस घंटों में बच्चा चाहना एक कुलीन इच्छा ही है। अब .... अब से, जैसा कि बाजें ने कहा है, सिनेमा ने हमारे सपनों के अनुरूप दुनिया को पेश करने की हमारी आँखों की भूमिका का अपहरण कर लिया है, इस असाधारण परीक्षा के लिए मिशैल ने इस युवा परशियन की दृष्टि के 300 उपहार रचे, और इस प्रकार प्रमाणित, हालाँकि प्रमाणित किया कि औरत हमेशा ही एक औरत है, उसी तरह यह भी कि सिनेमा हमेशा एक सिनेमा ही है। गोया इंतजार में, यहाँ है वह ! एन्जेला रेकमिएर उसका नाम है।

अन्ना : रोशनी ! कैमरा ! एक्शन !

गोदार : दो नीली आँखें : गिराउडौक्स। एक लाल छाता : आरेगोन। वह है एन्जिला।

शुक्रवार अपराह्न

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

स्ट्रासबोर्ग-सेंट-डेनिस में

संगीत : थीम ट्यून

अन्ना : हेलो ! चीजें कैसी हैं ?

संगीत : थीम ट्यून

लड़का : थोड़ा और कामुक होने के लिए तुम्हारे पास कुछ नहीं है।

संगीत

ब्रिएली : हाय !

अन्ना : क्या तुम अब भी नाराज़ हो ?

ब्रिएली : नहीं, मेरी परी।

अन्ना : तब, क्या तुम मुझसे प्यार करते हो ?

ब्रिएली : हाँ, मेरी परी।

अन्ना : देखो, क्या यह एक सुन्दर पोस्टकार्ड नहीं है, एमिले ...

संगीत : थीम ट्यून

गोदार : एमिले एक पुस्तक-विक्रेता है। दाशिएल हेमेट और 'मेरी क्लेअर' उसके पंसदीदा हैं। एंजेला उसे छोड़ती है जोडइक जाने के लिए।

और यह भोला-भाला बायादेरे

बहुत करीब सुन्दर होने के

अवा गार्ड-नेर की तरह।

संगीत : अन्ना का गीत 'हरेक को विस्मय क्यों है ?'

गोदार : सिनेमा की खोज एक महाकाय त्रुटि पर आधारित है। आदमी की छवि का अंकन, और इसका पुनरुत्थान समय ख़त्म होने तक प्रक्षेपण के ज़रिये। दूसरे शब्दों में, यह भरोसा करते हुए कि सेल्यूलाइड की पट्टी शिलाखंड या कि स्मृति से भी कम विकारी है। ग्रिफ़िथ से ब्रेसॉं तक इस विलक्षण विश्वास का अर्थ यह कि सिनेमा का इतिहास और उसकी त्रुटियों का इतिहास एक ही है : त्रुटि है विचारों को सगीत से कहीं बेहतर तरीके से चित्रित करने की, उपन्यास से बेहतर गतिविधियों को सज्जित करने की, चित्रकृतियों से बेहतर संवेदनाओं को वर्णित करने की। कोई कह सकता है, संक्षेप में, वह errare cinematographicum est ... लेकिन ईडन गार्डन की पूर्व-संध्या सम्बन्धी गलती थ्रिलर की मुग्धकारिता, वेस्टर्न की जकड़न, युद्धफिल्म के अंधकार, और जिसे सामान्यतः सांगीतिक कहा जाता है, के सम्मोहन में बदल गयी है।

संगीत : डॉस-हल जाज़

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गोदार : यहाँ दर्शक महसूस करते हैं एमिल जमा एन्जेला जमा अल्फ्रेड = रहने के लिए आकल्पन। वह अल्फ्रेड लुबित्श, दूसरे शब्दों में, एन्जेला के साथ रचना चाहते हैं। खूब ज़्यादा। पर साथ ही, शानदार ।4 जूलिएट में पाउला इलेरी की तरह, वह मिथ्या स्वप्न दिल में सँजोये रखते हैं।

अपमान दृश्य (बेलमोन्डो)

बेलमोन्डो–अन्ना दृश्य : तुमने मेरा इंतज़ार क्यों नहीं किया ?

बेलमोन्डो : क्या तुम इसी के लिए उदास हो ?

अन्ना : नहीं।

संगीत

बेलमोन्डो : फिर क्यों ?

अन्ना : क्योंकि मैं होना चाहती थी एक सांगीतिक ....

संगीत : वाद्यराज (औरगन)

गोदार : पहले यह था यहाँ। अब यह है वहाँ।
वहाँ जैसे एन्जेला देती है श्रद्धांजलि
करते हुए अपने घरेलू कामकाज।
श्रद्धांजलि किस को ?
'मेरी बहन वेरा एलन को ....'

गोदार : इस तरह अमरीकी कॉमेडी मर चुकी है। इसे छोड़ें क्योंकि सभी चीज़ें एक सेकेंड में चौबीस फ्रेम अनुसार घटने लगी हैं। लेकिन मैं अक्सर पीछे देखता हूँ। इस तथ्य का गवाह कि एन्जेला एक पुरानी फ़ैशन की लड़की है, अटपटी-सी। मादाम एक्सप्रेस के सामने, स्वभावतः। संतति-नियमन के बारे में पोप के साथ सहमत होते हुए। जाहिर है1

अन्ना : जनन-क्षमता का चार्ट पढ़ते हुए।

संगीत : थीम ट्यून

अन्ना : (प्रास्पेक्टस पढ़ना ज़ारी रखते हुए) 'थीम संगीत के साथ' : नवंबर दस ... आज कौन-सी तारीख है ?

गोदार : एमिले एंजेला को उसके शब्द पर धरता है। क्योंकि वह उसे प्यार करता है। और एन्जेला खुद को फंदे में पकड़ जाने देती है क्योंकि वह उसे प्यार करती है।

ब्रिएली : अब क्या है ?

अन्ना : प्रदर्शन के पहले किसी को, दर्शक के सामने प्रकट होना चाहिए।

संगीत : मिनट

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ब्रिएल : अब क्या है ?

अन्ना : तुम मुझे प्यार नहीं करती।

अन्ना-ब्रिएली दृश्य : 'मैं किसी को प्यार नहीं करता, पर तुम्हें।'

संगीत

अन्ना : ऐमिले, तुम क्यों नहीं साफ करते थोड़ा सा ....

एमिले : (गाता है) मैं किसी को प्यार नहीं करता' पर तुम्हें ...

रेडियो पर फुटबाल मैच, ज्याँ डोमार्थी की टिप्पणी करती आवाज़ के साथ (बार्सीलोना-मेड्रिड)

संगीत

अन्ना : मैने अभी तक ख़त्म नहीं किया है।

गोदार : ये 'इन्फेन्ट्स टेरीबल्स' जो 'लिव फ़ार फ्राम रुइल' प्रकृति और कैमरे के रिश्ते की तरह ही खुद को गढ़ रहे हैं। पत्र, विचार' जानने का पहला और सबसे पूर्ववर्ती उपकरण है और निर्देशन पहला और पूर्ववर्ती उपकरण है और निर्देशन पहला और पूर्ववर्ती है चीज़ों को उनके अपने देखने के बिन्दु से।

अन्ना-ब्रिएली दृश्य : हाँ एन्जेला, यदि हमें एक बच्चा होता ?

अन्ना : क्यों हमेशा स्त्री ही होती है जो तकलीफ ....'

ब्रिएला : टूर दे फ्रांस के दरम्यान एन्क्वेटिल को देखो।

दृश्य आरंभ : 'मैं बच्चा चाहती हूँ।'

ब्रिएली : मैं नहीं जानता क्यों, एकदम अचानक ...

अन्ना : मैं किसी से भी पूछूँगी ...

ब्रिएली : शुरु करो। यह तुम्हें अच्छा लगेगा।

पुलिस के साथ दृश्य-समापन (पहले पलटे के रेकार्ड का समापन)

पलटा दो

गोदार : क्यों-कि एक-दूसरे को प्यार करते हैं, हरेक चीज़ एमिले और एन्जेला के लिए ग़लत घटेगी। वे सोचने की गलती कर चुके हैं वे काफ़ी दूर जा सकते हैं।

ब्रिएली : एन्जेला !

गोदार : क्योंकि उनका प्यार पारस्परिक और आँतरिक है जैसा कि हम पहले ही कह चुके हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अन्ना : एमिले !

संगीत

अन्ना : विदा कामिले, अपनी सुविधा से लौटना।

संगीत

ब्रिएली: मैं फिर आऊँगा।

गोदार : एन्जेला सोचती है कि मृत्यु पुरुष का न्याय करती है। लेकिन वह जीवन स्त्री का न्याय करता है। लेकिन एक बार फिर इससे अलग कि एन्जेला बाउलेवार्ड्स और पेकुशेत पर बच्चों को देखे, बुजुर्गों की ओर नज़र डाले, ख़ास कर बुजुर्ग जिन्होंने उस पर बड़ा अच्छा प्रभाव डाला है। जिससे वह वृत्तचित्र और कथा में उल्लेखनीय भेद नहीं कर पाती। ठीक मेरी तरह। तो, आखिरकार एन्जेला उस अल्फ्रेड के बारे में जान जाती है .... एन्जेला उस एमिले के बारे में जान जाती है ... एन्जेला, जान जाती है कि उसका इस्तेमाल महज़ सवारी बतौर होता रहा है। ज़ाहिर है गाड़ी में। बल्कि रेनुआर की बेहतरीन फ़िल्म में कामिला की तरह एन्जेला जल्द ही आश्चर्य करेगी कि जहाँ रंगमच ख़त्म होता है वही ज़िन्दगी शुरू होती है।

संगीत

अन्ना : तुम नफ़रत करते हो मुझसे ...

संगीत : क्षण

अन्ना : सुखांतिकाओं और शोकांतिकाओं में भी, तीसरे अंक की समाप्ति पर

संगीत

गोदार : एन्जेला एक बार फिर अकेली है। हरेक शख़्स इस युवा लड़की से कमतर नही है जो शब्दाडंबर के ज़रिये अत्यन्त गैर महत्वपूर्ण साहसिकता को जानबूझकर नाटकीय बनाता है।

इस प्रकार एन्जेला बार्नानोस के उपन्यास के शांताल के कॉमिक विवरण का आभास कराती है। इस मौके पर एक टेलीफोन कॉल अल्फ्रेड की ओर से। वह पूरी तौर पर अनिवार्यतः एन्जेला से बात करना चाहता है किसी महत्वपूर्ण घटना के बारे में जो पिछली रात ही घटी है।

संगीत :

एन्जेला सरपट भागती है केफे नेपोलियन की ओर। नीला कोट, सफ़ेद फ़र, लाल बेरेट, उसके लिए खुशी का दिन आ पहुँचा है। यह आश्चर्यजनक है। मुझे लगा कि अल्फ्रेड और एन्जेला के इस बड़े दृश्य

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

से बहुत कुछ मिलेगा, लेकिन अंत में वहाँ कुछ नहीं था। उन्होंने बात की बेजान ढग से, कुर्सी पर बैठकर मस्तिष्क के बारह मार्यादित फ्रेम्स में प्रत्येक। क्योंकि यह एक सवाक् चित्र है। इस तरह, मैंने लक्ष्य किया कि सिनेमा में वह एक करीब-करीब हमेशा उसका ठीक उलटा करता जो कि योजित किया गया था, और अब भी आखिर में ही बाहर आता है जैसा कि किसी एक ने पहले कल्पित किया था। इससे क्या साबित होता है? इससे साबित होता है कि शाब्राल सही थे : महत्वपूर्ण बात संदेश नहीं बल्कि दृष्टि है।

संगीत

बेलमोन्डोइस सुबह पैरिस जौर (तार की कहानी) में ... तक : 'मैंने सोचा कि वह कुछ-कुछ तुम्हारी तरह की लड़की है।'

गोदार : एंजिला, घर लौटती है एमिले के आँसुओं के साथ। वह घोषणा करती है कि वह अल्फ्रेड के साथ सोयी थी। एमिले एक मारिवाउडेज़ के निष्कर्ष के लिए साक्रेटिक फ़ार्म के साथ हड़काता है तो भी मारिवाउडेज़ उचित शब्द नहीं है। यदि एंजिला मेरिन के नाम से पुकारी जाये तो यह मुस्सेट होगा। आख़िरकार यह एक मौज़-मज़े की कहानी है। किसी भी तरह, मैं वह cosifon tutte कहना चाहता था ! दुर्भाग्यवश, मैं मिशेल लिग्रेन्ड से एकाध परिवर्तन का संयोजन करने के लिए कहना भूल गया था। ठीक है, कोई बात नहीं। इसे सुनो, यह एक क्षण है जब एमिले इस नरक का अनुभव करते हुए नाखुश है।

संगीत : थीम ट्यून।

ब्रिएली : सो, यह है कि, लोग अन्यायी और निर्मम हैं।

संगीत दि थ्री ब्लोज़ आर स्ट्रक

संगीत : मिनट

ब्रिएली : मैं नहीं जानता कि यह कॉमेडी थी या ट्रेज़ेडी, लेकिन हर हालत में बेहतरीन थी।

अन्ना : आज्नावोउर रेकार्ड लगाओ।

अन्ना-ब्रिएली दृश्य : 'ति, ति, ता, ति।'

संगीत : क्षण

अन्ना-ब्रिएली दृश्य : 'क्या मैं रोशनी बुझा दूँ।' से 'हाँ' यह दुखद है।'

अन्ना : मुझे खेद है, प्रिय (संगीत : क्षण)

गोदार : सिनेमा कहाँ शुरू होता है ? निस्सन्देह अन्य कलाओं की तरह, जब रूप शैलियों में बदल जाते हैं। लेकिन हमें शैलियों के बारे में स्पष्ट होना

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चाहिए, शैली अर्थ का मामला है। यह एक ... मैं नहीं जानता। उदाहरण के लिए, यह मिज़ोगुशी का परिदृश्य है ऑर्सन वेल्स की आक्रामकता है। शैली ... कैसे मैं इसे व्यक्त करूँ ? यह एक यथार्थसत्ता है जिसके लिए मस्तिष्क करता है। साथ ही, मैं सोचता हूँ कि यह हीगेल द्वारा स्वतंत्रता की दी गयी परिभाषा भी है। एक दिन चैप्लिन की **ए किंग इन न्यूयार्क** के पक्ष में रोज़ेलिनी ने कहा : 'यह एक स्वतंत्र मनुष्य की फ़िल्म है।' बुनियादी रूप से, यही है यह। सिनेमा रचने के लिए हरेक को मुक्त मनुष्यों के लिए फ़िल्म बनाना चाहिए। एमिलो और एंजिला की तरह। ठीक, संगीत !

संगीत

अन्ना : तुम पढ़ नहीं सकते, मूर्ख ? यदि तुम मुझे प्यार नहीं करते, मैं प्यार करती हूँ।

ब्रिएली : और मान लो कि तुम गर्भवती हो ?

अन्ना : हाँ, यह भयावह है।

संगीत

अन्ना-ब्रिएल दृश्य : 'इसने अचानक मुझे एक विचार दिया है' ... से :

अन्ना : चलो चलें।

संगीत : थीम ट्यूंन।

अन्ना : वॉव।

ब्रिएली : वह एक कसा हुआ था .... (आखिर तक का पूरा दृश्य) 'तुम कुख्यात हो।'

अन्ना : मै कुख्यात नहीं हूँ। मैं एक औरत हूँ।

●●●

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मशहूर फिल्म समीक्षक कल्पना विश्वास द्वारा साक्षात्कार

◆ ऋत्विक घटक

वर्गहीन कला एक ढोंग है

"दुनिया में अभी तक कोई वर्ग-विहीन कला नहीं। क्योंकि वर्ग-विहीन समाज नहीं है। कला की हर कृति सापेक्ष है और मनुष्य के संदर्भ में है। हर सच्ची कला को मनुष्य की बेहतरी के लिए काम करना है। मैं किसी अपरिवर्तनीय अवधारणा में विश्वास नहीं रखता। लेकिन साथ ही मुझे आश्चर्य होता है उन तथाकथित महान फिल्मकारों पर जो मूलतः उथले कलाप्रेमियों के अलावा कुछ नहीं। जो मानव संबंधों की कला का राग अलापते हैं। ये अपने सामाजिक दायित्व से मुंह मोड़ने का एक चालाक तरीका है। वो जो करते हैं, वो महज, उनकी व्यवस्था के हित साधता है। वो गैर पक्षधरता का मुखौटा ओढ़ते हैं मगर दर-हकीकत पक्षधर हैं। ऐसे नारों से मुझे घिन आती है।"

–ऋत्विक घटक

◆ जनाब घटक, फिल्मों में आने की प्रेरणा आपको कहा से मिली ?

● आप कह सकते हैं कि टेढ़े-मेढ़े रास्ते से मैं फिल्मों तक पहुंच गया। अगर मेरे पिता का बस चलता तो मैं इन्कम टैक्स ऑफिसर होता। मुझे नौकरी मिल गई थी मगर भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल होने के कारण मैंने उसे छोड़ दिया। अगर मैं वो नौकरी करता रहता तो शायद अब तक कमिश्नर या अकाउन्टेंट जनरल होता। पर अब मैं महज गली का कुत्ता हूँ।

नौकरी छोड़ने के बाद मैंने कविता लिखने की कोशिश की मगर इसमें अपने आपको पूर्णतः असमर्थ पाया। मैंने अपना शौक छोटी कहानियों की तरफ़

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मोड़ दिया और थोड़ा बहुत नाम कमाया। इनमें से सौ से अधिक कहानियाँ देश, परिचय, शनिबारेर चिट्ठी आदि बंगाल की अग्रणी पत्रिकाओं में छपीं। तब मैंने जाना कि साहित्य मनुष्य की आत्मा में गहरे पैठता है। मगर ये धीमे काम करता है। भीतर अपनी जड़ें जमाने में काफी लंबा समय लेता है। किशोरावस्था के ठेठ उतावलेपन में मैं जल्द और फौरी असर डालना चाहता था क्योंकि मैं ये महसूस करता था कि जनता को तुरंत जगाने की जरूरत है। फिर एक चमत्कार हुआ–इप्टा (भारतीय गणनाट्य संघ) सबसे पहले आया 'जबानबंदी' (1943) और फिर 'बिजन भट्टाचार्य का 'धमाका नबानी' (1944) इन्होंने मुझे दर्शाया कि फ़ौरी और स्वतः स्फूर्त सम्प्रेषण के लिए थियेटर साहित्य से कहीं अधिक प्रभावी है। मैंने कहानियां लिखना छोड़ दिया और नाटक लिखने और नाटक मंडलियों को संगठित करने की ओर मुड़ गया।

इसके बाद दिल टटोलने का एक और मौका आया। ये मंच पर मेरी महानतम सफलता के बाद था। जादवपुर विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह का उद्घाटन राष्ट्रपति राधाकृष्णन् ने किया था। इसके साथ ही एक प्रतिष्ठापूर्ण नाट्य प्रदर्शन कैम्पस में हुआ। मैने इस मौके पर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के नाटक 'विसर्जन' का मंचन किया। मुख्य भूमिका मैं खुद निभा रहा था। आठ हजार से ज्यादा लोगों ने नाटक देखा। ये अद्भुत था। लेकिन इसने मुझे मंच पर ये ज़ाहिर किया कि ऐसे शो के जरिए भी मैं 10,000 लोगों तक ही पहुंच सकता हूँ। इतना अधिक सामूहिक श्रम बस इतने भर के लिए ? तब मैंने फिल्में बनाना तय किया।

◆ क्या फिल्म माध्यम के ज़रिये आप अपनी आकांक्षा पूरी कर पाए ?

● बीते समय पर एक नज़र डालूँ तो कह सकता हूँ कि फिल्म माध्यम से मेरा कोई विशेष लगाव नही है। मैं केवल अपने आसपास के यथार्थ के बारे में जो महसूस करता हूँ, वो लोगों तक पहुँचाना चाहता हूँ। मैं चिल्लाना चाहता हूँ। सिनेमा अभी भी मुझे इसके लिए एक आदर्श माध्यम लगता है क्योंकि कृति के एक बार तैयार हो जाने के बाद वो अरबों-खरबों लोगों तक पहुँच सकती है। इसलिए मैं फिल्म बनाता हूँ, फिल्म माध्यम के लिए नहीं बल्कि अपने लोगों के लिए। कुछ लोग कहते हैं टेलीविजन जल्द ही सिनेमा की जगह ले लेगा। वो करोड़ों और लोगों तक पहुँच जाएगा। तब मैं सिनेमा को छोडकर टेलीविजन की ओर रुख करूँगा।

◆ क्या आप किसी विशेष असर से फिल्मकार बनने के लिए प्रेरित हुए ?

● हां ! कई फिल्में थीं जैसे आईजेनस्टाइन की बेटलशिप पोतेमकिन, पुदोवकिन की मदर, चेकोस्लवाक फिल्म क्राकातित, ओटाकर ववरा की नीम बरिकदा और कई फिल्में थीं। 'आईजेनस्टाइन की ही फिल्म सेंस और फिल्म फ़ार्म, पुदोवकिन की फिल्म टेक्निक और एक्टिंग, आइवर मांटेगु का पेंगविन द्वारा निकाला गया फिल्म पर लेखों का संग्रह और बेला बालारज का थ्योरी ऑफ द फिल्म-इन सबने मेरे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

समक्ष एक नई दुनिया खोलकर रख दी।

ज्यादातर फिल्में जिनके नाम मैंने ऊपर लिए, उस समय वो हिंदुस्तान में प्रतिबन्धित थी। हम उन्हें चोरी-छिपे ही देखते थे। इन सबने हमारे तमाम अनुभव में एक रोमांच भर दिया। और फिर हुआ हिंदुस्तान में पहला फिल्मोत्सव जिसने हमारा परिचय इटेलियन नवयथार्थवाद से करवाया। ये भी पूर्णतया एक नया विस्मयकारी संसार था।

इन तमाम फिल्मों और किताबों ने मेरी रुचि विकसित करने में मदद की। लेकिन इनका सीधे तौर पर मुझ पर असर नहीं पड़ा। मैं किसी मत-विशेष का हिस्सा नहीं था।

◆ जिन लोगों का आपने ज़िक्र किया, क्या आपके मत मे वो महानतम फिल्मकारों में से हैं ?

● वे न तो दंभी फिल्मकार हैं और न ही उथले कलाप्रेमी। कमोवेश वो इस उत्तेजक माध्यम का अन्वेषण करने वाले अगुआ हैं। आईज़ेनस्टाइन, पुदोवकिन और एक तरह से दोवज़ेंको ने फिल्मों की एक नई कलात्मक भाषा को खोजा। दोनो पहले फिल्मकार ही नहीं थे साथ ही दुनिया के प्रथम फिल्म विचारकों में भी थे। कहीं के भी फिल्म बनाने वाले, खासतौर से आईज़ेनस्टाईन के ऋणी हैं। उसने हमें अभिव्यक्ति के लिए एक पूरा नया माध्यम दिया।

◆ फिल्में शायद अभी भी दुनिया में 'मेन कम्युनिकेशन' का सर्वाधिक उत्तेजक माध्यम है, लेकिन कुछ ही निर्देशकों ने इसकी अथाह संभावनाओं को खोजा है। कौन से निर्देशक और फिल्म-निर्माण के मत आपकी नजर मे विशेषतौर से सफल रहे हैं।

● मेरे मत में सर्गई युत्केविच और लुई बुनुयेल महानतम हैं। परन्तु युत्केविच की हाल ही में मौत हो गयी और बुनुयेल ने इस महान कला के व्यावसायीकरण के विरोध में गुस्से में फिल्म बनाने बंद कर दिया है। जां-लुक-गोदार का कहना है कि जब तक इस बुर्जुआ संसार में फिल्म बनाना एक कलम कागज खरीदने जितना सस्ता नहीं हो जाता, अच्छी फिल्में नहीं बनायी जा सकती। मैंने उसके बारे में आखिरी बार कुछ महीने पहले एक फ्रांसिसी पत्रकार से सुना था उसने फिल्में बनाना बंद कर दिया है और अपना समय पेरिस की चौड़ी सड़कों पर पार्टी के कामों में व्यतीत कर रहा है।

फिर एक जापानी मत है। मैं महज निर्यात के लिए फिल्म बनाने वाले अकीरा कुरोसोवा जैसे फिल्मकारों की बात नहीं कर रहा हूँ बल्कि मित्सोगुची, ओजू और तनाका जैसे निर्देशकों की बात कर रहा हूँ इनमे कुछ प्रतिभाशाली नौजवान निर्देशक भी हैं जैसे नगीसा ओशिमा, दक्षिण अमरीका में लियोपोलडो

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

टोरे निसलन, ग्रीस में माइकल केकोयीनस, फिर स्वीडन में इंगमार बर्गमैन हैं। मैं अमरीका के तथाकथित भूमिगत सिनेमा, ब्रिटिश स्कूल को विशेष महत्व नहीं देता और न ही सत्यजित राय जैसे कलाकार को जो ग़रीबी का साफ़ सुथरा, यथार्थवादी चित्रण करते हैं। एक अश्लील फिल्मों की धारा भी है जिसपर मझे बहुत गुस्सा आता है।

अन्य कई उल्लेखनीय फ़िल्मकार भी यक़ीनन होंगे। चूँकि विदेश की ताज़ातरीन कृतियों को देखने की कम ही गुंजाइश है इसलिए कई विशिष्ट कलात्मक कृतियां मुझसे छूट गई होंगी।

- मैंने इस बात को नोट किया कि आपने इतालवी स्कूल या विवादास्पद न्यूवेव आंदोलन का जिक्र नहीं किया।

- हूँ ! इतालवी स्कूल मेरे ख़याल में अब न के बराबर हैं। बाद की इतालवी चिंगारी नवयथार्थवाद फ़ेटरिको फ़ेलिनि, अंतोनियोनी, लुचिनो वाइकोंती और अन्य महान उस्तादों के हाथ विलक्षण यथार्थवाद में तब्दील हुई। लेकिन इनके बाद कुछ खास गुंजाइश नहीं बची। यही बात आंद्रेय वायदा और अन्यों के पोलिश स्कूल के लिए भी सच है। रोमन पोलंस्की जैसे लोगों के हाथों ये एक नव अस्तित्ववाद की तरफ जाने लगा। पोलंस्की ने सही ही आज हॉलीवुड में अपना स्वर्ग पा लिया है। न्यू वेव के बारे में यूं कहना चाहूंगा कि किसी भी चीज़ को या हर चीज़ को एक नाम, एक लेबल देने की विशिष्ट आदत है। मेरे ख्याल से न्यू वेव निहायत धुंधला और अस्पष्ट लेबल है जो त्रूफो को द 400 ब्लोज़ और रेनेर-रोबे-ग्रिलेट की लास्ट इयर इन मेरिनबैड जैसी फ़िल्मों पर एक ही सांस में लगाया जा सकता है। ये दोनों एकदम अलग फ़िल्में हैं। इनमें कोई समानता नही। इसलिए मै न्यू वेव का कोई मतलब नहीं समझता। इनमें से कई फ़िल्मकार बहुत सशक्त हैं। इसके बारे में कोई शक नहीं पूर्वी यूरोप के देशों में क्या हो रहा है उससे मैं वाकिफ़ नही हूँ।

- आप भारतीय फिल्मकारो के काम से तो वाक़िफ हैं। हमारी फ़िल्मों को कलात्मक कृतियों के रूप में आप कैसे आंकते हैं ?

- मैं बहुत खराब सिनेमा दर्शक हूँ। कभी-कभार ही फ़िल्में देखता हूँ। फिर भी जितना कुछ मैंने देखा है, मैं उससे यही कहूँगा कि बांग्ला फिल्मों का विकास रूक गया है। हमारे नये फ़िल्मकार भावुकता के आंसुओं और भद्दे ऑपेरा के दलदल में मरते है। पर बंबई समेत हिंदुस्तान के दूसरे हिस्सों में फ़िल्मकारों की एक नई पीढ़ी संभावनाए जगा रही हैं। बंबई में श्याम बेनेगल, कुमार शाहानी और मणिकौल, सत्यदेव दुबे पुणे में, सथ्यू कर्नाटक में और जॉन अब्राहम केरल में, ये सहज ही मेरे ध्यान में आते हैं। बंगाल में भी एक आंदोलन है पर व्यावसायिकता इसका दम घोंट रही है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

- लेकिन अभिनय क्षमताओं के बारे में आपको क्या कहना है। क्या भारतीय फिल्म उद्योग में कभी ऐसे अभिनेता या अभिनेत्रियाँ नही हुए जिनका ऐसा माद्दा हो कि उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता मिले ?

- स्पष्ट कहूँ तो कुछ फिल्मी सितारों और कुछ समय तक क्रेज पैदा कर पाने वाले चंद नामों को छोड़कर अभिनय के नाम पर भारतीय सिनेमा ने कुछ खास नहीं कर दिखाया है। इस संदर्भ में अपने देश मे बोंदर्चुक, तेशिरो मिफुने या गिलियेरा मासिना वगैरा की परिकल्पना भी नहीं कर सकते। अव्वल तो, फिल्म अभिनय निर्देशक और अभिनेता के बीच एक गहरे तादात्मय की उपज है और दुःख की बात है कि हिंदुस्तान में ये तारतम्य नहीं है। दूसरा, फ़िल्म अभिनय पूर्णतया कैमरा पोजीशन, प्रकाश-व्यवस्था और सबसे बढ़कर संपादन पर निर्भर है। जिन कलाओं के बिना फ़िल्म अभिनय सही मायनों में मुमकिन नहीं उनमें हमारे किसी भी अभिनेता या अभिनेत्री ने पारंगत होने की लेशमात्र इच्छा भी जाहिर नहीं की।

जब मैं अपने महान अभिनेताओं और अभिनेत्रियों को गज़ों सेल्युलॉइड में लस्टम पस्टम चलते देखता हूँ तो मेरे सामने बर्फ़ के लोंदे पर नाचने की कोशिश करते हाथी की छवि कौंधती है। वो यहाँ पैसा बनाने आते हैं और निस्संदेह बनाते हैं। यही उनके वजूद की वजह है और यही उनका चरम। ये एक्टिंग नहीं है।

- ज़िस एक्टिंग को आप निहायत भद्दा मानते हैं आज की अधिकांश फ़िल्मों की अत्यंत अविश्वसनीय, उथली प्लाट संरचना आदि के साथ ही हमारी व्यावसायिक फ़िल्मों का एक और बहुत अधिक तीखे ढंग से निंदित किया ज़ाने वाला विशिष्ट अभिलक्षण, हमारे मेटिनी सितारों का किसी भी बहाने से गीतों में फूट पड़ना है !

- हां ये बिल्कुल सच है।

- फिलिस्टीनिज़्म (सांस्कृतिक उदासीनता) के प्रति आपके इस तिरस्कारात्मक रवैए के बावजूद, आप अपनी लगभग तमाम फ़िल्मों में इस तकनीक के इस्तेमाल को कैसे सही ठहराते हैं ?

- देखिए मैं जां-लु-गोदार से सहमत हूँ कि कलाकार को अपना संदेश पहुँचाने के लिए जो भी वैध लगे वो उचित है। चाहे वो गाना हो, नाच हो, अख़बार की सुर्खियां हो या कामेंट्री या कुछ भी। कलात्मक वैधता ही एक मात्र मापदंड है। मुल्क में रचनात्मक कलाओं में, गीतों की एक मुख्य भूमिका रही है। अगर आज ये सपनों के सौदागर उनका ग़लत इस्तेमाल करते हैं तो ये कोई कारण नहीं कि मैं उनका अपनी फ़िल्मों में इस्तेमाल न करूँ। मेरे पास तो इस वक़्त बंगाल की लोककथा पर आधारित एक स्क्रिप्ट तैयार है जिसे मैंने संवादों का परित्याग कर लिखी है जिसमें 25 गीतों और कई कविताओं का इस्तेमाल किया है। दूसरे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

छोर की भी एक स्क्रिप्ट मैंने लिखी है जिसमें न तो गीत हैं न संवाद, केवल विरूपित शोर है और पार्श्व संगीत ! ये महाराष्ट्र के कोली कबीले की एक गूंगी-लड़की की कहानी है जिसे फ़िल्माने मैं बंबई जा रहा हूँ। मेरा गीतों के प्रति कोई विशेष आकर्षण अथवा लगाव नहीं है। मेरी पहली रिलीज़ होने वाली फ़िल्म 'अजांत्रिक' में कोई गीत नहीं था। उस फ़िल्म में मुझे उसकी ज़रूरत महसूस नहीं हुई, लेकिन जब-जब मुझे उनकी जरूरत महसूस हुई है, मैंने उनके इस्तेमाल में कोई हिचकिचाहट नहीं दिखाई।

- आठ फीचर फ़िल्मों और दस से भी अधिक लघु फ़िल्में आपने बनाई हैं। इनमें से कौन सी से आप खुद संतुष्ट रहे हैं और क्यों ?

- इसका जबाव मुश्किल है पर आज तक मेरी चार फ़िल्मों से मुझे सबसे ज्यादा संतुष्टि मिली है। **अजांत्रिक** क्योंकि उसमें अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता थी और कुछ तकनीकी उपलब्धियां। **'सुवर्णरेखा'** जो कि मेरी सबसे अधिक दार्शनिक फ़िल्म है। **'तिताश एकटि नदीर नाम'** जो कि ग्रामीण बंगाल का एक काव्यात्मक फिल्म है जो कि वर्गीय चरित्रों को दर्शाया है जो ठेठ बंगाली हैं। और **'कोमल गांधार'**, उसमें मैंने आम कथानक को छोड़कर अपनी अवधारणा को एक ही वक़्त में चार स्तरों पर प्रतिस्थापित किया है।

- पर अब आपने फिर नाटक की तरफ वापसी की है। फिल्म माध्यम के साथ ऐसे संतोषजनक प्रयोगों के बाद, कुछ असामान्य प्रयोजनों के साथ और एक बड़े दर्शक समूह तक पहुंच पाने के लिए, नाटक से सिनेमा की तरफ आपके शुरूआती रुख के बाद– आप नाटक की तरफ फिर से क्यों आए ?

- ऐसा कहना चाहिए कि ये वापसी मेरे बुढ़ापे में एक तरह का बौद्धिक व्यायाम है। ये मुझे इंसानी मज़ा और उष्मा देता है। थियेटर, लेखक और दर्शक के बीच वो आपसी आदान-प्रदान स्थापित करने में मदद करता है जो किसी और माध्यम में नहीं मिलता। वे मेरी प्रेरणा का रहस्य है। साथ ही, मैं अपने लोगों को जानना चाहता हूँ ताकि मैं सिनेमा में अपने योगदान को और समृद्ध कर सकूँ।

- आपने नाटक और फ़िल्म दोनों में काम किया है। इन दोनों माध्यमों के बीच सबसे बड़ा फर्क क्या है ?

- दोनों निहायत अलग-अलग माध्यम हैं। हम उनकी भाषा की एक-दूसरे से बराबरी नहीं कर सकते, हालांकि कभी-कभी वो एक-दूसरे से मिल जाते हैं। अच्छी फ़िल्म बनाने की कुंजी है संपादन। इसमें एक विशिष्ट टाइमिंग सेंस की बात है। सत्यजित राय एकमात्र ऐसा भारतीय निर्देशक है जिसके पास योग्यता है।

फ़िल्म-निर्माण एक बेहद यांत्रिक क्रिया है। जहां कल्पना और प्रेरणा के अनायास झोंकों का कोई अस्तित्व नहीं। ये दर-हकीकत एक भावुक पदार्थ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है जिसे शांत अवस्था में फिर से सजोया गया है। यानी कि तमाम चीजे फ़िल्मांकन की असली प्रक्रिया से बहुत पहले से नियोजित हैं। इस आशय में फ़िल्म निर्देशक लगभग एक तानाशाह की तरह है। लेकिन थियेटर में ऐसा नहीं है। एक रेगिसियोर (स्टेज मैनेजर-निर्देशक) अपने कलाकारों के लिए सिर्फ मोटी-मोटी रूपरेखा तैयार कर सकता है। एक बार पर्दा उठ जाने के बाद उसकी कोई भूमिका नहीं। कलाकार ही पेशकश की रचना करता है जबकि निर्देशक साइड में कहीं बैठकर देखता है।

- क्या आपने कभी किसी अभिनेता की अभिनय, क्षमता की अथाह संभावनाओं के साथ प्रयोग करने की भी सोची ? जैसा कि ग्रोटोवस्की और उसके अनुयायी कुछ उल्लेखनीय नतीजों के साथ कर रहे हैं ?

- कुछ रेडियो नाटकों को छोड़कर पिछले 19 वर्षों में मेरा नाटक के साथ कोई रिश्ता नहीं रहा है। स्पष्ट कहूं तो इस वक़्फे में मैने कभी नाटक के बारे में सोचा भी नहीं। अब जब मैंने मंच की तरफ वापसी का फैसला लिया है तो मैं समझता हूँ कि मैं ब्रेख़्त से बहुत प्रभावित हुआ हूँ। मैंने उनके कुछ नाटकों का बंगला भाषा में अनुवाद किया है। मैंने ब्रेख्त के नाटक 'मदर करेज' को बरलिनर ओंसाम्बल के मंच प्रोडक्शन पर बनी एक लंबी डाक्युमैंट्री फ़िल्म में देखा है। मैंने उनके कुछ लेख पढ़े हैं। और उनका सबसे अहम अवधारणात्मक लेख ऑरगैनम भी पढ़ा है। चूँकि मैं कभी हिंदुस्तान से बाहर नहीं गया, मेरी जानकारी सेकेंड-हैंड ही है। लेकिन जो कुछ मैंने सीखा है उसने मेरे सोचने के तरीके को ढाला है, पर मैं यह अवश्य कहूँगा कि जब मैं खुद नाटक का निर्माण करूँगा तो स्वाभाविक है कि मैं अपने आपको किसी मत विशेष के बंधन में नहीं जकडूंगा। मुझे जब मौका मिलेगा मैं प्रयोग करूंगा और अपनी अलग फ़ार्म विकसित करूंगा।

- आपकी राय में आज हिंदुस्तान में कौन-सा नाट्य आंदोलन अधिक फलदायी है?

- राष्ट्रीय स्तर पर हिंदुस्तान में कोई नाट्य आंदोलन नहीं है। अलग-अलग कोशिशे ज़रूर हैं। जैसे मराठी रंगमंच पर तेंदुलकर हैं। कर्नाटक, पटना और दिल्ली में एव बलशाली आंदोलन विकसित हो रहा है। हिंदी लेखकों और कलाकारों की एक नई पीढ़ी नए और जोशीले विचारों के साथ उभर रही है केवल बंगाल में ही एक अलग नाट्य आंदोलननुमा है। सामाजिक रूप से सचेत नौजवान और नवयुवतियां और एब्जर्ड रंगमंच के प्रवर्तक नए प्रयोग कर रहे हैं। बंगाली बहुत स्वाभिमानी लोग हैं और इस आंदोलन का सबसे आशावान सूत्र है कि ये सिर्फ कलकत्ता तक सीमित नहीं है ये जिलो और औद्योगिक कस्बों तक फैल गया है। गावों तक भी, पेशेवर रंगमंच को इस पर ध्यान देना पड़ा है और इसने दो विशिष्ट तरीकों से प्रतिक्रिया की है। एक है सेक्स और फूहड़, मजाकिया नाटको से। हर दूसरे नाटक मे अब एकाध कैबरे सीन है, जो नग्नता से एक ही कदम

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कम होता है। दूसरा तरीका है नये रंगमंचीय विचारों के साथ प्रयोग, केवल कमर्शियल रंगमंच के दायरे के बाहर ही कुछ अत्यधिक उत्साहप्रद कोशिशें हो रही हैं।

- क्या आप समझते हैं कि इनमें से कोई कोशिश विशेषतौर से सफल रही है ?

- एक तरह से शंभु मित्र ने एक नई ज़मीन तलाशी है। बिजन भट्टाचार्य ने उल्लेखनीय नाटकों की कोशिश की है। लेकिन उन्हें अच्छे निर्माताओं की जरूरत है। और उत्पल दत्त भी हैं। मेरे लिए अपनी तमाम खामियों के बावजूद उत्पल दत्त बंगाल का अब तक का सर्वोत्तम मंच-निर्माता हैं। वो एक अच्छा व्यंग्यकार भी हैं। उसके नाटकों को सराहा जाता है। वो खुद भी एक अच्छा एक्टर है। ये सब लोग हमारी पीढ़ी के हैं। मैं आज की पीढ़ी के लोगों को नहीं आंक सकता। लेकिन इनमें से कुछ के नाटक और प्रोडक्शन बहुत अच्छे हैं।

- पेशेवर रंगमंच में सेक्स के गलत इस्तेमाल के बारे में आपने तिरस्कारात्मक अंदाज में बात की है। इससे एक और विवाद उठा है। क्या सेक्स, नग्नता और चुंबन नाटक और सिनेमा में सही हैं ? एक लेखक, निर्देशक और अभिनेता के नजरिए से आपकी क्या राय है ?

- मैं न इसका समर्थन करता हूँ और न इसको नकारता हूँ। ये निहायत बचकाना सवाल है। मुझे समझ नहीं आता लोग इसे लेकर इतने उद्वेलित क्यों हैं। कला में हर चीज वैध है। मुख्य सवाल है कि वो लोग जो नग्नता चुंबन जैसी चीजों के प्रबल समर्थक हैं क्या वो ये समर्थन कला के आग्रहों पर कर रहे हैं या वो केवल पैसा बनाना चाहते हैं ? साथ ही मैं भारतीय संस्कृति के रूढ़िवादी संरक्षकों से अनुरोध करूंगा कि वो हमारी प्राचीन गुफाओं और मंदिरों में स्वयं जाकर देखें कि हमारे पूर्वजों का इन सवालों के प्रति क्या रवैया था ? मुख्य बात ये है कि इस मुनाफ़ा कमाने वाले समाज में हर व्यक्ति जो इस सवाल के पक्ष अथवा विपक्ष में है, अपना हित साध रहा है। इनमें से कोई भी न तो निरपेक्ष आलोचक है और न ही कलाओं का।

- स्पष्टतः आप ये समझते हैं कि दर्शकों के मनोरंजन के लिए या अपने मुनाफे के लिए फ़िल्म बनाना घृणित कार्य है। क्या आपका मानना है कि इस ताकतवर मास मीडिया का इस्तेमाल सुधारवादी प्रोपेगैंडा और सक्रिय प्रचार के लिए किया जाना चाहिए ? जैसा हमारे चंद बेहतरीन फ़िल्मकारों ने अक्सर कला के एवज में किया है ?

- मैं इस विषय में थोड़ा पुरातनपंथी हूं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा था कि कला को खूबसूरत होना चाहिए। मगर उससे भी पहले उसे सच्चा होना चाहिए। अब सवाल है कि सच क्या है ? कोई शाश्वत सच नहीं है। हर कलाकार को एक दर्द

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भरी निजी प्रक्रिया से गुजरकर अपने निजी सत्य को जानना होता है। यही उसे सम्प्रेषित करना होता है। दुनिया में अभी तक कोई वर्ग-विहीन कला नहीं क्योंकि वर्ग-विहीन समाज नहीं है। कला की हर कृति सापेक्ष है और मनुष्य के संदर्भ में है। हर सच्ची कला को मनुष्य की बेहतरी के लिए काम करना है।

मैं किसी अपरिवर्तनीय अवधारणा में विश्वास नहीं रखता। लेकिन साथ ही मुझे आश्चर्य होता है उन तथाकथित महान फ़िल्मकारों पर जो मूलतः उथले कलाप्रेमियों के अलावा कुछ नहीं। जो मानव संबंधों की कला का राग अलापते हैं। ये अपने सामाजिक दायित्व से मुंह मोड़ने का एक चालाक तरीका है। वो जो करते हैं वो महज, उनकी व्यवस्था के हित साधता है। जो ग़ैर पक्षधरता का मुखौटा ओढ़ते हैं मगर दर-हकीकत पक्षधर हैं। ऐसे में आपकी कहानियों, नाटकों और फिल्मों को उन्होंने अपनी व्यवस्था के हित में प्रेरित किया है ?

कोई विशेष संदेश नहीं है। लेकिन मैं अपने आस-पास घटित हो रही सामाजिक प्रक्रियाओं पर तीखी प्रतिक्रिया करने की कोशिश करता हूँ। पूर्व पाकिस्तान के बंगाली होने के नाते मैंने अपने लोगों को झूठी और छद्म स्वतंत्रता के नाम पर अनगिनत पीड़ाओं को सहते देखा है। मैंने इसके खिलाफ प्रतिक्रिया की है। अपनी आख़िरी फ़िल्म (जुक्ति तक्को आर गप्पो जो अभी रिलीज नहीं हुई है) में भी इस प्रक्रिया के विभिन्न आयामों को दर्शाने की कोशिश की है। मैं, आज अपने आस-पास नैतिक मूल्यों के ह्रास से भी वाकिफ हूँ, खासतौर से युवा पीढ़ी से। मेरी अगली फ़िल्म 'शेई विष्णुप्रिया' इस समस्या से दो टूक होती है। मेरा ताज़ा नाटक भी इसी मुद्दे पर आधारित है।

(लेख, वर्ष-2, संख्या-7-8, सितंबर 1976, संदर्भ : सामग्री : ऋत्विक कुमार घटक, सिनेमा एंड आई, कोलकता ऋत्विक मैमोरियल ट्रस्ट, 1987, अनुवाद : बृजेश शर्मा, आभार : 'सही समझ')

●●●

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

◆ आन्द्रेई तास्कोवस्की

समय में गढ़ते हुए

(आइजेंस्टाइन, जो विश्व सिनेमा के प्रणेता यथार्थवादी फ़िल्मकार थे, उनसे ही सीखते और उन्हें खंडित करते तास्कोवस्की की मीमांसा को सचेत दृष्टि से पढ़ा जाना चाहिए। उनके पूर्वाग्रसहित - सम्पादक)

"बात को कुछ इस तरह कहें कि कोई आत्मिक–यानि महत्वपूर्ण फेनोरमा महत्वपूर्ण है तो विशेषकर इसलिए क्योंकि वह अपनी स्वयं ही की सीमा लांघता है, वह किसी विशाल आध्यात्मिक और ज्यादा ही बड़ी सार्वभौमिक बात की अभिव्यक्ति और प्रतीक की तरह, बल्कि भावनाओं और विचारों का एक समूचा संसार अपने ही भीतर मूर्त कर प्रस्तुत होता है- यही उसके महत्व का पैमाना है।"

-टॉमस मान, दि मैज़िक माउन्टेन

यह कल्पना करना ही मुश्किल है कि कलात्मक बिम्ब जैसी कोई अवधारणा किसी ऐसे सुनिश्चित सिद्धांत के रूप में व्यक्त की जा सकती है जो आसानी से सूत्रबद्ध और बोधगम्य हो सके। यह संभव नहीं है, और कोई भी नहीं चाहेगा ऐसा हो। मैं सिर्फ इतना ही कहूँगा कि बिम्ब अनंत में फैलते हुए चरम की ओर बढ़ते हैं और फिर, जिसे हम बिम्ब का विचार कहें–कि वह बहुआयामी और बहुअर्थी है–वह ठीक अपने स्वभाव के तई, शब्दों में व्यक्त नहीं हो सकता। लेकिन, कला में वह अपनी अभिव्यक्ति खोज लेता है। विचार के किसी कलात्मक बिम्ब में अभिव्यक्त हम का अर्थ यही होगा कि उसके लिए कोई बिल्कुल उपयुक्त रूप--रचनाकार के संसार को बहुत सूक्ष्मता के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

साथ सप्रेषित करने वाला रूप–मिल गया है। यहाँ मैं यह कोशिश करूंगा, कि आम तौर से जिन्हें बिम्ब कहा जाता है उसकी किसी संभाव्य व्यवस्था–कि जिसके भीतर मैं सहज और मुक्त महसूस कर सकूँ ऐसी व्यवस्था--के पैरामीटर्स को परिभाषित करूँ। सहज नजर डालो, तब, जिनमें तुम हिस्सेदार रहे-- उन घटनाओं की एक-एक विशिष्टताओं की और जिन पात्रों से मिले उनकी विलक्षण वैयक्तिक-विशिष्टताओं को याद कर चकित होते हो। यह अकेली-अकेली निजी विशिष्टता अस्तित्व के हर क्षण के प्रबल लक्षण की तरह है, जीवन के हर क्षण में, स्वयं जीवन-सिद्धांत ही अपने-आप में विलक्षण हैं। इसीलिए, कलाकार उस सिद्धान्त को ग्रहण करने की कोशिश करते हुए उसे देह प्रदान करता है, हर बार नयी देह और हर बार आशा करता है–हालाँकि व्यर्थ में--कि वह मानवीय अस्तित्व के सत्य की संपूर्ण छवि हासिल कर लेगा। सौन्दर्य की गुणवत्ता जीवन के उस सत्य में है जो कलाकार के द्वारा नयी तरह से, उसके व्यक्तिगत स्वप्न के अनुरूप, आत्मसात् किया जाये और प्रकट हो। कोई भी, ज़रा-सी सूक्ष्मता से देखे तो लोगों के व्यवहार में चालबाजी और असलियत, छलकपट और ईमानदारी, पाखण्ड और सत्यनिष्ठा के बीच भेद को हमेशा चीन्हं लेगा। जीवन के अनुभव द्वारा हमारे बोध में एक तरह की छत्री जन्म लेती है जो हमें उस चमत्कार पर यक़ीन करने से रोकती है जिसमें संरचनात्मक विन्यास–अप्रासंगिक बन जाये या अनजाने टूटता है।

कुछ लोग झूठ बालने में अयोग्य हैं। कुछ ऐसे हैं जो पूरे भरोसे और अंतःस्फूर्ति के साथ झूठ बोलते हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो नहीं जानते कैसे झूठ बोलें, लेकिन झूठ नहीं बोलने में अयोग्य हैं, और बड़ी फूहड़ता और निकम्मेपन के साथ वैसा करते हैं। हमारे इन विचारणीय विषय– ज्ञानी, जीवन की तार्किक संगति के सूक्ष्म अवलोकन–के अंतर्गत दूसरी तरह के लोग ही सत्य की धडकन को पहचान पाते हैं और किसी प्रायः ज्यामितीय महीनता के साथ जीवन की चंचल प्रवृत्तियों को भलीभाँति समझ सकते हैं।

बिम्ब अभेद्य और मायावी होता है, हमारी चेतना पर और, कि जिसे रूपाकृत करना चाहता है उस यथार्थ-संसार पर निर्भर रहता है। अगर संसार अभेद्य है, तब बिम्ब भी वैसा ही होगा। किसी-न-किसी तरह का यह समीकरण सत्य और मानवीय चेतना के (कि जो यूक्लिडियन द्वारा बँधी हुई है) दरम्यान किसी परस्पर सह-संबंध का सूचक है। हम ब्रह्मांण्ड की समग्रता को ग्राह्य नहीं कर सकते, लेकिन काव्यात्मक बिम्ब उस समग्रता को अभिव्यक्त कर सकता है।

बिम्ब सत्य की एक धारणा है, यानि हमारे आगे छाये हुए अंधकार की दरार में से प्रदान की गयी एक झलक। जब विभिन्न जोड़ सत्य की स्पष्ट अभिव्यक्ति बन ऐसा विलक्षण और बेजोड़ देहधारी बिम्ब बनाएँ कि अपनी सरलतम अभिव्यक्तियों में स्वयं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जीवन ही जैसा है तभी वह देहधारी बिम्ब विश्वसनीय होगा।

जीवन के सूक्ष्मतम अवलोकन के रूप में बिम्ब हमें एकदम जापानी कविता की ओर ले जाता है।

मेरे लिए सर्वाधिक आकर्षक बात यह है कि यहाँ—पहेली को शनैः शनैः बुझाने जैसा–किसी अंतिम बिम्ब की ओर इशारा करता कोई संकेत नहीं है। हाइकू अर्थ नहीं रखतीं, और उसी क्षण इतना कुछ अभिव्यक्त करती हैं कि उनके अंतिम अर्थ को पकड़ना नामुमकिन है। बिम्ब जैसे-जैसे अपनी क्रियाशीलता (फंक्शन) के संगत होता जाता है वैसे-वैसे यह असंभव हो जाता है कि उसे किसी स्पष्ट बौद्धिक सूत्र में संकुचित करें। हाइकू के पाठक को उसी तरह उसमें रमना चाहिए जैसे वह प्रकृति में रमा हो; डूब कर, गहराई में जा स्वयं को बहने देते हुए, ब्रह्माण्ड में तैरता-सा कि जहाँ आकाश है न पाताल।

एक पल बाशो की इन हाइकू पंक्तियों पर गौर करें : **तालाब पुराना निश्चल/ एक मेंढ़क कूदा जल में/ छप से आवाज उठी।/ या :/ छप्पर के लिए कटे सरकंडे/ ठूँठ खड़े उपेक्षित/ मुलायम बर्फ़ की बौछार तले।/या फिर :/कैसा आलस ?/ कोई मुझे उठा न पाया।/ बसंती बारिश बुदबुदाती।**

ज़िंदगी को कितनी सरलता और बारीकी के साथ देखा गया है ! सोच का कितना अनुशासन और कल्पना की कैसी शालीनता ! पंक्तियाँ अत्यंत सुन्दर हैं क्योंकि क्षण, उखड़ा और जमा है, अभिन्न और अनंत भी है।

जापानी कवि 'अवलोकन की तीन पंक्तियों' में यथार्थ के अपने स्वप्नों को अभिव्यक्त करना जानते हैं। उन्होंने उसे महज देखा नहीं, बल्कि दिव्य शांति के साथ उसके कालातीत अर्थ को खोजा। और फिर, अवलोकन जितना सूक्ष्म होगा वह उतना ही विलक्षण होगा और किसी बिम्ब का रूप लेने में उतना ही सक्षम होगा। जैसा दोस्तोवस्की ने गहरी अंतर्दृष्टि के साथ कहा, "ज़िन्दगी किसी भी गल्प से बढ़-चढ़ कर होती है।"

सिनेमा में यह बात कुछ ज्यादा ही अहमियत रखती है कि अवलोकन ही बिम्ब का महत्वपूर्ण सिद्धांत है जो फोटोग्राफ़िक रेकार्ड से प्रायः अविभाज्य है। फ़िल्मी-बिम्ब अवतार-स्वरूप, द्रष्टव्य और चार-आयामी है। लेकिन, किसी भी हालत में, हर फिल्मी-दृश्य संसार का बिम्ब नहीं हो सकता, जैसा कि अक्सर ही वह किसी विशिष्ट पहलू ही को नहीं बखानता। तथ्यों का जस-का-तस (नेचुरलिस्टिक) निरूपण सिनेमाई बिम्ब के सृजन के लिए अपने-आप में कतई पर्याप्त नहीं है। सिनेमा में उभरा बिम्ब सिनेकार के स्वयं ही के भीतर उपजे किसी पदार्थ के बोध को अवलोकन के रूप में प्रस्तुत करने की योग्यता पर निर्भर है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गद्य से एक दृष्टांत उठाएँ—टालस्टॉय की कहानी **ईवान इलीच की मृत्यु** के अंत ने हमें बताया किस तरह कैंसर की मृत्युशैय्या पर ओछे-स्वभाव की पत्नी और छिछली पुत्री से घिरा एक रूखा और घुन्ना आदमी मृत्यु के पूर्व उनके लिए क्षमा की याचना करता है ! उस क्षण, बिल्कुल अप्रत्याशित रूप से, वह भलमनसाहत के इतने गहरे भाव से भर जाता है कि सुन्दर वस्त्र पहनने में मगन, नृत्य-पार्टियों में गाफिल, संवेदनहीन और विचारशून्य उसका परिवार उसे एकाएक गहरे दुख से भरा मालूम देने लगता है जो उसकी सारी दया और करुणा का हक़दार है। और फिर, मृत्यु की नोक पर उसने महसूस किया जैसे कि वह अँतड़ी-समान किसी लंबी, कोमल काली नली में रेंगता जा रहा है। .... दूर कहीं रोशनी की कोई झलक दिखाई देती है और वह रेंगता ही जाता है। लेकिन किनारे नहीं पहुँचता, जीवन को मृत्यु से अलग करती अंतिम प्राचीर को लांघ नहीं पाता। उसकी पत्नी और लड़की पास खड़ी है। वह कहना चाहता है, "मुझे क्षमा करना।" लेकिन इसके बनिस्बत अंतिम क्षण में कहता है , "मुझे जाने दो।" (यहाँ अंग्रेजी में है 'फ्रॉरगिव मी" और "लेट मी थ्रू"। लेकिन मूल रूसी शब्दों से बात ज्यादा स्पष्ट होती है। ... वह कहना चाहता है "प्रोस्तीते" लेकिन बोल निकलते हैं "प्रोपोस्तीते")। स्पष्टतः वह बिम्ब, जो हमें हमारे अस्तित्व ही की गहराइयों तक हिला देता हो, उसकी केवल एक ही व्याख्या नहीं हो सकती। उसके कई अर्थ—हमारी अपनी ही धुँधली स्मृतियों और अनुभूतियों को याद करते हुए, हमें अचंभित करते हुए, किसी रहस्योद्घाटन की तरह हमारी आत्माओं को झंझोरते हुए—हमारी अंतरतम भावनाओं तक पहुँचते हैं। तुच्छ कहलाने का जोख़िम उठाते हुए कहूँ—कि वह जीवन के, और हमने जिस सत्य का अनुमान किया उसके इतने समान है कि वह उन स्थितियों का मुकाबला कर सकता है जिन्हें हम पहले-ही से जानते या कल्पना में बसाते आये हैं। अरस्तूई-सिद्धांत के अनुसार किसी प्रतिभावान व्यक्ति द्वारा अभिव्यक्त वचन सामान्य-सा ही मालूम देता है। लेकिन, वह कितना गहरा और बहुआयामी बन जाता है यह पाठक के चित्त पर निर्भर करेगा। हमने लिओनार्दो के पोर्टेट जूनिपर के साथ एक युवती को फ़िल्म मिरर में उस दृश्य के लिए उपयोग में लिया जिसमें छुट्टी ले घर आया पिता बच्चों संग कुछ वक़्त बिताता है—ज़रा हम उस पर गौर करें।

लिओनार्दो के बिम्बों की दो चीज़ें आकर्षक हैं। पहली है, पदार्थ को बाहर से परखने की। यानि, संसार को 'पीछे खड़े होकर' या 'ऊपर से' देखकर परखने की कलाकार की क्षमता—जो बाख़ या टालस्टॉय जैसे कलाकारों की विशिष्टता है। और दूसरी है ऐसी शिल्पकारी कि चित्र हमें एक ही पल में दो विपरीत तरीकों से प्रभावित करे। यह बताना संभव नहीं कि पोट्रेट हमारे ऊपर अंततः क्या प्रभाव डालता है। यह भी निश्चित रूप से कहना संभव नहीं कि हम स्त्री को चाहते भी हैं या नहीं, या कि वह मनोहर है अथवा अप्रिय। उसी क्षण वह आकर्षक है, अनाकर्षक भी। उसमें, अनिर्वचनीय रूप से, कुछ-न-कुछ सुन्दर है और उसी पल कुछ-न-कुछ अरुचिकर, या शैतान-सा।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भी कुछ है। यहाँ शैतान-सा कहने का अर्थ शब्द के रूहानी या सम्मोहनी भाव में नहीं; बल्कि अच्छा और बुरा के भाव के परे है। वह नकारात्मक-लक्षणयुक्त सौन्दर्य है। उसमें विकृति का कोई तत्व है—और सुन्दरता का भी। मिरर में, हमारी आँखों के समक्ष एक-दूसरे का पीछा करते क्षणों के दरम्यान कालातीत तत्व के समावेश के लिए हमें उस पोट्रेट की जरूरत थी, और उसी पल हम नायिका के साथ पोर्ट्रेट को जस्टापोज़ करते हुए उसके और अभिनेत्री मार्गरिता तेरेखोवा के भीतर एक-ही-पल में लुभाने और जुगुप्सा उपजाने की वही क्षमता भरना चाहते थे।

यदि लिओनार्दो के पोट्रेट को उसके अवयवों में विभक्त कर विश्लेषण करने की कोशिश करें तो वह फ़िजूल बात होगी। उससे किसी स्तर की कोई व्याख्या नहीं होगी। चित्र की स्त्री द्वारा हम पर डाला गया भावनात्मक प्रभाव ख़ासकर इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि उसमें अपनी पसंदीदा किसी भी चीज़ को ढूँढना या समग्र में से किसी एक विवरण को छाँट लेना, या किसी एक क्षणिक प्रभाव को दूसरे से ज़्यादा तरज़ीह देकर अपने स्वयं का बना लेना, या प्रस्तुत बिम्ब की ओर देखने के तरीके में कोई संतुलन प्राप्त करना संभव नहीं। अतः यहीं पर हमारे लिए अनंत के साथ 'खेल' करने की संभावना बन जाती है, क्योंकि कलात्मक बिम्ब की महान क्रियाशीलता (फंक्शन) किसी-न-किसी तरह से अनंत का खोजी बनने ही में है ... जिसकी तरफ़ हर्ष और रोमांच से भरी जल्दी में हमारी भावनाएँ उमड़ती रहती हैं। बिम्ब की समग्रता के द्वारा इसी तरह क़ी भावना उभरती हैं; यानि, वह हमें खास इसी तथ्य से प्रभावित करती है कि उसे विच्छिन्न करना संभव नहीं। अलग-अलग पड़ कर प्रत्येक घटक मृत ही होगा—या शायद, इसके विपरीत, यह भी हो सकता है कि अपने लघुत्तम तत्वों में वह समग्र ही की यानि पूर्ण कृति की चारित्रिक विशेषताओं को अभिव्यक्त करें और ये विशिष्टताएँ एक-दूसरे के विपरीत सिद्धांतों की पारस्परिक क्रियाओं द्वारा उत्पन्न होती हैं, जिनका अर्थ, संचार-नलिकाओं में जारी कार्यप्रणाली की तरह, एक से दूसरे में फैलता जाता है। (लिओनार्दो द्वारा चित्रित स्त्री का चेहरा किसी उदात्त विचार से सजीव हो उठता है और उसी क्षण धोखे से भरा भी दिखाई दे सकता है और निम्नस्तरीय आवेग भी उत्पन्न कर सकता है।) पोर्ट्रेट में कितनी ही चीजों को देखना संभव है, लेकिन उसके सार को ढूँढने के प्रयास में हम अनंत भूलभूलैयों में भटक जायेंगे और कभी भी रास्ता पकड़ नहीं पायेंगे। हमें इस अनुभूति से गहरा आनंद मिलेगा कि हम उसे सोख नहीं सकते, या कि उसके कण-कण को सारा देख पूरा नहीं कर सकते। खरा कलात्मक बिम्ब प्रेक्षक को अत्यंत जटिल, अंतर्विरोधी और यदाकदा परस्पर वर्जित भावनाओं की समक्षणिक अनुभूति देता है।

यह भली भाँति जान लेना चाहिए कि उस वक्त, जब गुणवाचक अपने ही विरूद्ध हो जाये, या गुणहीन सगुण का रूप लेने लगे तब क्षण को पकड़ना संभव नहीं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बहुलता बिम्ब की संरचना ही के भीतर अंतर्निष्ट है, अत्यंत निकट से संलग्न है। बहरहाल, व्यवहार में, कोई व्यक्ति, सदैव ही, किसी एक चीज़ को दूसरी से ज्यादा तरजीह देता है, चुनाव करता है, अपने स्वयं की पसंद के अनुसार खोजता है, या अपने स्वयं के व्यक्तिगत अनुभव के बरवस किसी कलाकृति को निर्धारित करता है। चूँकि अपने-अपने काम में हरेक की कुछ-न-कुछ विशिष्ट प्रवृत्तियाँ होती हैं, और वह बड़ी-बड़ी या छोटी-छोटी चीजों में अपने स्वयं ही के सत्य का आग्रह करता है, तब जब भी वह कला को अपनी दैनंदिन आवश्यकताओं के अनुकूल बनायेगा तो किसी कलात्मक बिम्ब की व्याख्या अपने स्वयं-ही के 'लाभ' की दृष्टि से करेगा। वह किसी कृति को अपने ही जीवन के संदर्भ में निर्धारित करते हुए अपने सूत्रों के दायरों में घेरता है, क्योंकि श्रेष्ठ कृतियाँ परस्पर-विरोधी गुणोंवाली होती हैं और उनमें अनेकानेक विभिन्न व्याख्याओं की गुंजाइश रहती है।

किसी कलाकार को बिम्बों की उसकी अपनी ही व्यवस्था के नीचे, जानबूझकर, किसी-न-किसी प्रकार के उद्देश्य या विचारधारा का टेका लगाते देख मैं अक्सर उदास हो जाता हूँ। अपनी विधियों को समझाने की ज़रा भी गुंजाइश रखने के उसके सारे प्रयासों का मैं सख़्त विरोध करता हूँ। अपनी ही फ़िल्मों में कुछेक दृश्यों को बने रहने देने का मुझे हमेशा अवसर मिलता है; अब वे मुझे भेद-खोलने के साक्ष्य मालूम देते हैं जिन्हें मेरी फ़िल्मों में इसीलिए गुंजाइश मिली क्योंकि मैं पूरी तरह धुन का पक्का नहीं था। यदि अब भी संभव हो तो मैं **मिरर** में से मुर्गे के दृश्य को काटना चाहूँगा चाहे उसने अनेक दर्शको पर गहरा प्रभाव डाला हो। दरअसल वह इसलिए फ़िल्म में आया **क्योंकि मैं दर्शकों के आगे 'झुकने' का खेल खेलने लगा था।**

जब, लगभग बेहोश-सी और खूब थकी नायिका, इरादा बना रही होती है कि मुर्गे की गर्दन काटे या नहीं, तब हमने, 'क्लोज़-अप' दृश्य रचते हुए, अंतिम नब्बे फ़्रेम के लिए, तेज गति से, प्रत्यक्षतः कृत्रिम प्रकाश में उसका फिल्मांकन किया। चूँकि पर्दे पर वह दृश्य धीमी गति में उभरता है अतः वह समय की रूपरेखा को फैला देने का प्रभाव डालता है—यानि हम, उस क्षण पर रोक लगा कर उसे विशिष्ट बनाते हुए, दर्शकों को नायिका की दशा जानने समझने की ओर घुमा देते हैं। यह अनुचित है। क्योंकि दृश्य शुद्ध रूप से साहित्यिक अर्थग्रहण करने के लिए आरंभ होता है। हम नायिका के चेहरे को उससे स्वतंत्र करते हुए (जैसे वह उसके लिए कोई भूमिका खेल रही हो) विरूप कर देते हैं। हम भावावेग को, अपने स्वयं ही के, यानि निर्देशक के तरीकों से निचोड़ कर, हमारी ही इच्छानुसार दर्शकों को परोसते हैं। उसकी दशा बिल्कुल साफ़ हो जाती है, और सरलीकृत ढंग से पढ़ी जा सकती है। जबकि, किसी पात्र की मनोदशा की व्याख्या करने में भेद भरा कुछ बना रहना चाहिए। इसी तरीके के एक ज्यादा सफल उदाहरण को मिरर ही में से लेकर उद्धरित करता हूँ। प्रिंटिंग

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रेस वाले दृश्य के कुछ फ्रेम भी धीमी-गति (स्लो-मोशन) में फ़िल्मांकित हैं; लेकिन इस प्रकरण में वह दृश्य ज़रा भी बोधगम्य नहीं है। हमने उसे पूरी नज़ाकत और सावधानी के साथ रचने का ध्यान रखा ताकि दर्शक उसे आसानी से समझ न सकें, बल्कि किसी अद्भुत बात के धुँधले भाव को महसूस करें। यहाँ धीमी-गति की विधि का उपयोग कर हम किसी विचार को रेखांकित नहीं कर रहे थे, बल्कि अभिनय के अतिरिक्त किन्हीं उपायों से मनोदशा को दर्शा रहे थे।

कुरोसोवा द्वारा रचित मैकबेथ का रूपांतरण एक उत्कृष्ट दृष्टांत है। दूसरा कोई औसत निर्देशक, मैकबेथ के जंगल में भटक जाने वाले दृश्य में, धुंध के भीतर रास्ता खोजने की कोशिश करते अभिनेताओं को झाड़ों से टकरा देता। लेकिन अत्यंत प्रतिभावान कुरोसोवा बड़ा ही सुन्दर खेल करते हैं। वह ऐसी जगह चुनते हैं जहाँ एक विलक्षण, स्मरणीय पेड है। घुड़सवार, तीन बार उसका चक्कर लगाते हैं ताकि साफ़ पता चल जाए कि वे उसी जगह भटक रहे हैं। घुड़सवार स्वयं महसूस नहीं करते कि वे उसी जगह भटक रहे हैं। घुड़सवार स्वयं महसूस नहीं करते कि वे पहले ही से रास्ते भूल गये हैं। स्पेस की अवधारणा को अपने ही तरीके से निरूपित करने के लिए यहाँ कुरोसोवा का पहलू अत्यंत सूक्ष्म रूप से काव्यात्मक हो जाता है जहाँ वे किसी विरूपण (मैनरिज़्म) या आडम्बर का ज़रा-सा भी संकेत न देकर स्वयं को अभिव्यक्त करते हैं। क्योंकि तीन बार चक्कर लगाते पात्रों का पीछा करने के लिए कैमरे को घुमाने से अधिक सरलतम बात और क्या हो सकती है ?

यों कहें कि **बिम्ब, निर्देशक द्वारा अभिव्यक्त कोई विशेष 'अर्थ' नहीं, बल्कि, पानी की बूँद समान, एक समूची प्रतिबिम्बित सृष्टि है।**

एक बार ठीक पता चल जाये तो कहना क्या है, अगर अपने चित्र की हरेक कोशिका को भीतर से देख कर उसे ठीक से महसूस कर लो, तो फिर सिनेमा में अभिव्यक्ति की कोई तकनीकी समस्या नहीं है। उदाहरण के बतौर, नायिका की एक अजनबी (जिसकी भूमिका अनातोलिय ने अदा की है) के साथ आकस्मिक भेंट वाले दृश्य में यह बहुत जरूरी था कि उसके जाते ही अचानक आ मिले इन दो व्यक्तियों के बीच कड़ी बिठाने के लिए कोई धागा पिरोया जाये। जाते-जाते अगर वह किसी भावपूर्ण दृष्टि से पलट कर नायिका की ओर देखता तो दृश्य अनुक्रमिक बनता हुआ व्यर्थ हो जाता। तब हमें मैदान में हवा के झोंके को दिखाने का ख्याल आया जो अजनबी के ध्यान को आकर्षित करता है क्योंकि वह इतना अप्रत्याशित है कि उसे पीछे देखना पड़ा ...। अतः इस स्थिति में, यूँ कह सकते हैं कि 'रचनाकार' को उसी के खेल में पकड़ने' और उसी के अभिप्रायों को उसे ही दर्शा देने का कोई सवाल नहीं है।

जब दर्शक निर्देशक द्वारा उपयोग में ली गयी विधि से बेख़बर हो, तभी वह पर्दे पर चल रही घटना के यथार्थ में यानि, कलाकार के द्वारा ध्यान से देखे गए जीवन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

में यकीन करने को बाध्य होगा। लेकिन अगर दर्शक, निर्देशक को समझ लें, और ठीक-ठीक जान जाये कि उसने क्यों उस विशिष्ट 'भावपूर्ण' करिश्मे को प्रयुक्त किया, तब वे पर्दे पर घटती घटना को सहानुभूतिपूर्वक समझना या उसमें बहना बंद कर देंगे, और उसके प्रयोजन और निष्पादन को जाँचना शुरू कर देंगे। **दूसरे शब्दों में यों कहें, कि मार्क्स ने जिस 'कमाना के बाबत चेतावनी दी वह सीट के बाहर उभर आयेगी। गोगोल के अनुसार, बिम्ब की क्रियाशीलता (फंक्शन) यही है कि वह जीवन ही को अभिव्यक्त करे, जीवन के बाबत विचारों या तर्कों को नहीं। वह जीवन का अर्थ या प्रतीकात्मक प्रदर्शन नहीं बल्कि उसकी विलक्षणता को व्यक्त करती अभिव्यक्ति है।** तब 'प्रतिरूप में खड़ा क्या', और कला में जो कुछ मौलिक और अद्वितीय है उसके साथ उसका क्या संबंध ? अगर बिम्ब विलक्षण चीज़-सा उभरे तब 'प्रतिरूप' में खरा क्या' इस सोच की क्या गुंजाइश ?

विरोधाभास यों कि किसी कलात्मक बिम्ब मे विलक्षण तत्व रहस्यात्मक-ढंग से प्रतिरूपक होता है, क्योंकि अद्भुत-भाव से यह प्रतिरूपक तत्व उस चीज के साथ प्रत्यक्षतः अन्योन्याश्रित हो जाता है जो वैयक्तिक है, स्वभावतः विशिष्ट है, किसी अन्य से भिन्न है। ऐसा नहीं कि फेनोमना को प्रकृत और वैसे-का-वैसा निरूपित करने पर ही 'प्रतिरूप में खरा क्या' का हमें पता चलेगा (हालाँकि अमूमन माना यही जाता है कि तभी वैसा होगा), बल्कि दरअसल उसका हमें तब पता चलेगा जब फेनोमना विशिष्ट हों। कह सकते हैं कि कोई व्यापक चीज या बात किसी विशिष्ट चीज या बात को आगे ठेलती है, जो पुनः लौट कर पुनर्प्रस्तुति के दिखावटी (यानि सच को छिपा आगे आये हुए) ढाँचे के बाहर बनी रहती है। इसे किसी विलक्षण फेनोमना की उपसंरचना की तरह मान लिया गया है।

अगर यह बात सामने आते ही विचित्र लगे तब तो यह ध्यान में रखना होगा कि कलात्मक बिम्ब को सत्य बताने वाले संयोजनों के अतिरिक्त किन्हीं दूसरे संयोजनों को नहीं उभारना चाहिए। (यहाँ हम बिम्ब का सृजन करने वाले कलाकार की चर्चा कर रहे हैं न कि उसे देखने वाले दर्शकों की।) काम शुरू करते ही कलाकार को मान लेना होगा कि किसी विशिष्ट फेनोमना को रूप देने वाला सर्वप्रथम व्यक्ति वो ही है जो काम वह कर रहा है। वह बिल्कुल पहली बार किया जा रहा है, और ठीक उसी रूप में किया जा रहा है। कि जैसा केवल वो ही उसे महसूस करता या समझता है कलात्मक बिम्ब विलक्षण और अद्वितीय है, जबकि जीवन के फेनोमना पूरी तरह तुच्छ और नगण्य हो सकते हैं। यहाँ मैं दोबारा हाइकू का उदाहरण प्रस्तुत करूँगा :

नहीं मेरे घर नहीं
वह, वह टपटपाता छाता
वह तो पड़ोसी के यहाँ चला गया।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हाथ में छाता लिया कोई राहगीर, जिसे हमने अनेक बार जीवन में देखा होगा, उसे देखना अपने आप में कोई नई बात नहीं; वह आम लोगों ही में से एक आदमी है जो बारिश से बचता हुआ सपाटे में चला जा रहा है। लेकिन, कलात्मक बिम्ब के भीतर हम, कवि के द्वारा रचे जीवन के किसी बिल्कुल अद्वितीय क्षण पर ध्यान जमाते हैं जो किसी उपयुक्त और सरल रूप में निरूपित है। उसकी मनःस्थिति को महसूस करने के लिए तीन पंक्तियाँ पर्याप्त हैं : उसका एकांत, खिड़की से झाँकता धूसर बरसाती मौसम, और एक ऐसी निरर्थक उम्मीद कि चमत्कारवश कोई उसके एकांति, अभागे घर में आएगा। अत्यंत सतर्कता के साथ निरूपित की गई दशा और मनःस्थिति बिल्कुल अनोखी और व्यापक अभिव्यक्ति अर्जित करती है।

इन विचारों के आरंभ में हमने जानबूझकर उसे टाला जिसे गल्प के पात्र का बिम्ब (कैरेक्टर इमेज) कहते हैं। उसे इस बिन्दु पर चर्चा में शामिल कर लेना उपयुक्त होगा। उदाहरणस्वरूप, बाशमाचकिन और ओनेगिन पर विचार करें। साहित्यिक प्रतिरूपों की शक्ल में वे किन्हीं सामाजिक नियमों का आदर्श प्रस्तुत करते लगेंगे, जो उनके अस्तित्व की पूर्वमान्य शर्तें हैं--यह तो हुई एक बात। दूसरी ओर, उनमें कुछेक सार्वभौम मानवीय विशेषताएँ हैं। सब कुछ को यों कहें : साहित्य में कोई पात्र तब प्रतिरूपक बनेगा जब वह विकास के सामान्य सिद्धांतों के परिणामस्वरूप प्रचलित प्रतिमानों को प्रतिबिम्बित करेगा। प्रतिरूपों की शक्ल में, इसलिए, यथार्थ जीवन में बाशिमाचकिन और ओनेगिन के अनेक तुल्यरूप मिल जायेंगे। बेशक ! लेकिन कलात्मक बिम्ब की शक्ल में वे निःसन्देह नितांत अकेले और अनुपम हैं। वे अत्यन्त ठोस हैं, अपने रचेता द्वारा विशाल स्तर पर देखे गए रूप हैं, सर्जक के दृष्टिकोण को भरपूर वहन किये हैं, ताकि हम कह सकें "हाँ, हाँ; ओनेगिन वह बिल्कुल मेरे पड़ोसी समान ही है।" रास्कोलाविकोव का शून्यवाद (निहिलिज़्म) ऐतिहासिक और समाजशास्त्रीय शर्तों पर निःसन्देह प्रति-रूपक है; लेकिन उसके बिम्ब की निजी और वैयक्तिक शर्तों पर वह बिल्कुल अकेला है। बेशक, हैमलेट भी एक प्रतिरूप हैं; लेकिन आसान संदर्भों के भीतर हैमलेट कहाँ देखा जा सकता है ?

हम किसी विरोधाभास के सामने खड़े हैं; यानि जो प्रतिरूपक है उसकी समूची संभाव्य अभिव्यक्ति को बिम्ब ही व्यक्त करता है, और जितनी अधिक पूर्णता के साथ वह उसे अभिव्यक्ति करता है उतना ही ज़्यादा वैयक्तिक, उतना ही ज्यादा मौलिक वह बनता जाता है। वह, हाँ वह, यानि बिम्ब वह असाधारण चीज़ है ! एक माने में, वह जीवन ही से ज्यादा सपन्न है; खासकर शायद इसलिए क्योंकि वह चरम सत्य के विचार को अभिव्यक्त करता है।

निःसंदेह लिओनार्दो और बाख़ का व्यावहारिक रूप में कोई अर्थ नहीं है। बिल्कुल ही नहीं--उनके स्वयं का जो अर्थ है उसके अतिरिक्त उनका कोई मतलब नहीं;

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यही उनकी स्वायत्तता का पैमाना है। वे संसार को ऐसे देखते हैं जैसे पहली बार देखा हो, लेकिन, स्वयं को ज़रा भी नीचे झुका महसूस करते हुए कतई नहीं। वे उसकी ओर उन लोगों की स्वतंत्रता के ज़रिये देखते हैं जो बिल्कुल अभी-अभी पहुँचे हैं !

सारे सृजनात्मक कर्म सादगी के लिए, यानि, परिपूर्ण सरलतम अभिव्यक्ति के लिए प्रयत्नशील रहते हैं; और इसका यही अर्थ हुआ कि जीवन के पुनर्सृजन की अथाह गहराइयों तक पहुँचना। लेकिन यह ही--यानि, जो आप कहना या अभिव्यक्त करना चाहें उसके और तैयार किये गये बिम्ब में उपजे अंतिम पुनरुत्थान के दरम्यान कोई सुगम उपाय खोजना--यह ही सृजनात्मक कर्म का सर्वाधिक कष्टसाध्य अंग है। सरलता के लिए संघर्ष ही आपके द्वारा पूर्णरूपेण समझे गये सत्य के उपयुक्त रूप को साधने की कष्टप्रद खोज है। आप उपायों की मितव्ययिता का ध्यान रखते हुए महान् चीजों को उपलब्ध बनाने की कुशलता हासिल करने के लिए तरसते हैं।

परिपूर्णता के लिए प्रयत्नशील रहना ही किसी कलाकार को आध्यात्मिक अन्वेषणों की दिशा में, यानि यथासाध्य नैतिक उद्यम का प्रयास करने की दिशा में ले जाता है। चरम की आकांक्षा मानवता के विकास के लिए गतिमान आवेग है। मेरे लिए कला में यथार्थवाद का विचार उसी आवेग के साथ सम्बद्ध है। **कला तभी यथार्थवादी है जब वह किसी नैतिक आदर्श को अभिव्यक्त करने के लिए प्रयत्नशील हो। सत्य के लिए उद्यमशील होना ही यथार्थवाद है, और सत्य सदैव सुन्दर है।** यहाँ पर ही सौंदर्यात्मक के साथ नैतिक का मेल होता है।

समय, लय और सम्पादन

फ़िल्मीय बिम्ब के बावत मनन करते हुए मैं इस बहुप्रचारित विचार को एकदम निरस्त करना चाहता हूँ कि वह मूलतः 'संयोजित' है। मुझे यह धारणा नागवार लगी क्योंकि इसमें यह अंतर्निहित मान लिया गया कि सिनेमा सगोत्र कला रूपों के गुणों पर आधारित है और उसमें अपने स्वयं का कोई विशिष्ट गुण नहीं है--इसका मतलब तो यही होगा कि सिनेमा कला नहीं है।

फ़िल्मीय बिम्ब का प्रबल, और भरपूर-शक्तिशाली तत्त्व फ़्रेम के भीतर समय के प्रवाह को अभिव्यक्त करती लय है। पात्रों के व्यवहार, द्रष्टव्य हलचलों, और ध्वन्यात्मक गतिविधियों के द्वारा समय का वास्तविक बहाव भी स्पष्टतया प्रस्तुत होता है--लेकिन ये सब प्रासंगिक घटक हैं जिनकी अनुपस्थिति, सैद्धांतिक रूप में फ़िल्म के अस्तित्व को कतई प्रभावित नहीं करती। ऐसी किसी सिनेमाई कृति की कल्पना नहीं की जा सकती जिसमें चित्र (शॉट) के भीतर समय के बहने का भाव न हो, हालाँकि

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ऐसी फ़िल्म की कल्पना हो सकती है जिसमें अभिनेता, संगीत, सज्जा बल्कि यहाँ तक कि संपादन भी न हो। ल्यूमियर-ब्रदर्स द्वारा रचित विख्यात कृति अराइवी दुन ट्रेन का उदाहरण हमारे सामने हैं। उसी तरह दो-एक फ़िल्में अमरीकी अधो जगत् की भी हैं, जिनमें से एक में, सोया हुआ आदमी, जगता है, और उस पल में सिनेमा अपनी स्वयं ही की जादूगरी से बिल्कुल अप्रत्याशित और अद्‌भुत सौंदर्यात्मक प्रभाव उत्पन्न करता है। इसी तरह पास्कल ऑबिएर की दस मिनट अवधि की फ़िल्म में केवल एक चित्र (शॉट) है। पहले वह प्रकृति का जीवन दर्शाती है, भव्य और प्रशांत, जो मानवीय हड़बड़ाहटों और आवेगों से शून्य है। फिर, कला-मर्मज्ञ कौशल के द्वारा नियंत्रित कैमरा, एक नन्हे-से बिन्दु (किसी पहाड़ी की ढलान पर उगी घास में नहीं के बराबर दिखाई देते सोये-हुए किसी आकार) पर घूमता है। उसके तत्काल बाद नाटकीय क्रमपरिणति होती है। समय का प्रवाह हमारी उत्सुकता से प्रेरित हो, तेज गति पकड़ता दिखाई देता है। सब कुछ यों जैसे हम कैमरे के संग-संग, गुपचुप, बड़ी सावधानी के साथ, उस 'बिन्दु' की ओर बढ़ते हुए पास पहुँच, महसूस करते हैं कि आदमी मृत है। दूसरे क्षण हमें ज़्यादा जानकारी दी जाती है, और वह यह कि दिवंगत की हत्या हुई है, वह एक बागी था जिसने ज़ख्मों के आगे दम तोड़ दिया; लेकिन हम उसे नितांत भिन्न स्वभाव की पृष्ठभूमि के बरक्स देखते हैं। हम हमारी स्मृतियों के ज़रिये बड़ी जोर से उन घटनाओं पर ध्यान आकर्षित करने को विवश होते हैं जो आज के संसार को झकझोर रही है।

आप गौर करेंगे कि उस फ़िल्म में संपादन है न अभिनय, सज्जा भी नहीं। लेकिन फ्रेम के भीतर समय की गतिविधि की लय ऐसी है जो, नितांत जटिल नाटकीय हलचल को विन्यस्त करती एकमात्र ताकत समान है।

किसी फ़िल्म के एकाकी अवयव का पृथक-से कोई अर्थ नहीं ! फ़िल्म ही कलाकृति है। महज़ सैद्धांतिक बहस की ख़ातिर, फिल्म को कृत्रिम रूप से तोड़ कर ही उच्छृंखलतापूर्वक हम उसके अवयवों के विषय में केवल बातें कर सकते हैं।

मैं इस धारणा को भी स्वीकार नहीं करता कि किसी फ़िल्म का प्रमुख रचनात्मक तत्व संपादन है जिसे कुलेशोव और आइजेंस्ताइन की तरह, 'मोंताज़ सिनेमा' के समर्थक सदी के तीसरे दशक मे इस तरह मानते रहे जैसे कि फ़िल्म संपादन-कक्ष में रूप लेती हो।

यह सदैव सही बताया गया कि चुनाव और समायोजन की दृष्टि से अंगों और अवयवों की संयोजना के लिए प्रत्येक कला-रूप संपादन को अंतर्निहित मानता है। फिल्मांकन के दौरान सिनेमाई-बिम्ब अस्तित्ववान होकर फ्रेम के 'भीतर' विद्यमान रहता है। इसीलिए, फ़िल्मांकन (शूटिंग) के दौरान, मैं फ्रेम के भीतर, समय के प्रभाव पर ध्यान देता हूँ ताकि उसे पुनः प्रस्तुत करूँ और रेकार्ड करूँ। अपने में पहले-से ही समय के भरे हुए चित्रों (Shots) को 'संपादन' के जरिये समीप लाकर फ़िल्में में अंतर्निहित एकीकृत जीवंत संरचना को व्यवस्थित किया जाता है, और ध्यान रहे कि फ़िल्म की धमनियों में धड़कता समय उसे सजीव रखने वाला समय घटते-बढ़ते

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लयात्मक प्रभावों का समय है। **मैं 'मोंताज़ सिनेमा' के इस विचार-किं संपादन दो अवधारणाओं को एक साथ लाकर किसी तीसरी नयी अवधारणा को जन्म देता है-को भी सिनेमा के स्वभाव के संगत नहीं मानता।** कला अवधारणाओं की पारस्परिक क्रियाओं को अपने अंतिम लक्ष्य की तरह कदापि स्वीकार नहीं कर सकती। बिम्ब किसी ठोस और ऐंद्रिक के साथ भले बँधा हो, फिर भी वह आत्मा के घर जाती रहस्यात्मक राह के किनारे-किनारे फैलता जाता है—शायद इसीलिए पुश्किन ने ठीक की कहा, "कविता को थोड़ा बहुत संवेदन शून्य होना ही चाहिए।"

सिनेमा का सौंदयशास्त्र, यानि नीचतम भौतिक पदार्थों का ऐसा मिश्रण है जो प्रतिदिन पग-पग रौंदते हैं, वह प्रतीकात्मकता का प्रतिरोधी है। एक अकेली फ्रेम ही यह दर्शाने के लिए पर्याप्त है, कि पदार्थ के चुनाव और उसे दर्ज़ करने के मामले में निर्देशक प्रतिभावान है या नहीं, कि उसमें सिनेमाई दृष्टि या कल्पना है या नहीं। संपादन अंततः चित्रों के संकलन का आदर्श रूपांतर भर ही है, अनिवार्यतः उस पदार्थ के भीतर नियंत्रण जो फ़िल्म के कुंडल पर चढ़ा हुआ है। किसी फ़िल्म का बिल्कुल सही ढंग से, और पूरी दक्षता के साथ संपादन करने का यही अर्थ होगा कि विभिन्न दृश्यों और चित्रों (Scenes and Shots) को स्वतःस्फूर्त ही एक-साथ आने देना क्योंकि एक माने में वे स्वयं ही का संपादन कर लेते हैं, यानि वे अपने स्वयं ही की आभ्यंतरिक बनावट के अनुसार संबद्ध हो जाते हैं। 'काटने' और 'जोड़ने' के वक़्त सवाल महज़ उस बनावट को पहचानने और उसका अनुसरण करने भर का ही है। संबंधों की बनत का, दृश्यों के बीच संधियोजनाओं का—विशेषकर तब कि जब दृश्य पूरी तरह उपयुक्त रूप से नहीं खींचा गया हो—बोध कर लेना सदैव आसान नहीं होता, ऐसी स्थिति में विभिन्न टुकड़ों का संपादन के ज़रिये तार्किक और स्वाभाविक रूप से महज संयोजित करना ही नहीं बल्कि घनघोर परिश्रम करके संधियोजनाओं के आधारभूत सिद्धान्त का सुराग़ लगा लेना भी ज़रूरी है। बहरहाल, थोड़ा-थोड़ा करके, आपको पदार्थ ही के भीतर बसा सारभूत तारतम्य उभरता और स्पष्ट होता दिखाई देगा।

फ़िल्मांकन (शूटिंग) के दौरान पदार्थ के भीतर बसे विशिष्ट गुणों के कारण ही, संपादन के वक्त जिज्ञासा से भरी पूर्व प्रभावी प्रक्रिया के तहत, एक आत्म-व्यवस्थित संरचना आकार ग्रहण करती है। संपादन के स्वरूप में फ़िल्मीय पदार्थ का सारभूत स्वभाव उभर आता है।

दोबारा अपने ही अनुभव के आधार पर बताऊं कि **मिरर** के संपादन में बहुत ज्यादा काम करना पड़ा। हमारे सामने करीब बीस रूपांतर थे। कुछेक दृश्यों के क्रम में परिवर्तनों की ही बात नहीं, बल्कि मूलभूत संरचना ही में, यानि प्रसंगों के सिलसिले (सीक्वेंस) ही में महत्त्वपूर्ण रद्दोबदल किया जाना जरूरी लगा। कई बार लगा फ़िल्म का संपादन नहीं हो सकता, अतः इसका यही अर्थ हो सकता था कि फ़िल्मांकन ही के दौरान असहनीय गलतियां हो गयी हैं। फ़िल्म गुँथी हुई नहीं। अड़िग नहीं। देखने पर बिखरी-बिखरी लगे, उसमें कोई तारतम्य नहीं, अनिवार्य अंतरसंबंध नहीं, कोई तर्कसंगति नहीं। और फिर किसी उजले दिन, किसी-न-किसी तरह हमने एक आख़िरी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हताश पुनर्विन्यास की कोशिश की–देखा, तो फिल्म तैयार थी। सारा पदार्थ सजीव हो गया; अंग-अंग अन्योनाश्रित होकर क्रियाशील हो गये जैसे किसी रक्तप्रवाह से जुड़ गये हों। और जब उस अंतिम, हताश हरकत को पर्दे पर प्रक्षेपित किया गया, तो फ़िल्म हमारी आँखों के सामने उत्पन्न हुई। कई दिनों तक मुझे विश्वास ही नहीं हुआ कि चमत्कार–यानि फ़िल्म का संयोजन हो गया।

यह हमारे फ़िल्मांकन (शूटिंग) के पारंगत होने का साक्ष्य था। ज़ाहिर है कि विभिन्न अवयव तारतम्य में इसीलिए व्यवस्थित हो पाये क्योंकि पदार्थ ही में वैसा रुझान अंतर्निहित था, वह फ़िल्मांकन ही के वक़्त अद्भुत हुआ होगा; और सारी कठिनाइयों के बावजूद अगर हम उसके वहाँ होने के बाबत स्वयं ही को धोखा नहीं दे रहे थे तब तो पिक्चर को किसी सिलसिले में आना ही था, वही होना सारी बातों की मूलभूत प्रकृति ही में बसा हुआ था। उसका होना बिल्कुल वाजिब था, सहज और तर्कसंगत, क्योंकि हमने पहले ही से दृश्यों के सार और प्राणवत्ता को चीन्ह लिया था। और जब वह हो गया, ओह भगवान–हम सब को बेइंतहा राहत मिली। स्वयं समय ही, दृश्यों के बीच बहता हुआ, मिला और एक-साथ जुड़ गया।

मिरर में लगभग दो सौ दृश्य हैं, जिन्हें बहुत कम ही माना जायेगा क्योंकि उतनी लम्बी फिल्म में प्रायः पाँच सौ दृश्य रहते हैं; संख्या का कम होना उनकी लम्बाई के कारण है।

यद्यपि किसी फ़िल्म की संरचना के लिए दृश्यों की संयोजना महत्वपूर्ण तो हैं लेकिन वह उसकी लय का सृजन नहीं करती, भले ही आमतौर पर मान लिया गया हो कि करती है।

दृश्यों के बीच बहता हुआ विशिष्ट समय ही फिल्म की लय रचता है और लय संपादित अंशों की लम्बाई से नहीं, बल्कि उनके भीतर प्रवाहमान समय के द्वारा निर्धारित होती है। संपादन लय को कदापि निर्धारित नहीं करता (हद-से-हद वह शैली का लक्षण माना जा सकता है); दरअसल, संपादन के कारण नहीं बल्कि उसके बगैर ही समय पिक्चर के अंदर बहता रहता है। फ्रेम में दर्ज समय का प्रवाह ही वह पदार्थ है जिसे संपादन के दौरान अपने सामने विशेष अंशों में निर्देशक को पकड़ना होता है।

फ़्रेम में मुद्रांकित समय विशिष्ट संपादकीय सिद्धान्त तय करता है; और वे अंश जो 'संपादित नहीं हो पाते'–यानि, जो उपयुक्त तारतम्य में जोड़े नहीं जा सकते–वे, वे हैं जो अपने में मूलतः भिन्न प्रकार का समय दर्ज़ किये हुए होते हैं। मसलन, आप अवधारणात्मक समय के साथ वास्तविक समय को जोड़ नहीं सकते--वैसा करना भिन्न व्यास के नलों को जोड़ने की तरह ही हो सकता है। दृश्य के बीच बहते समय की संगति को, यानि उसकी ढलान को समय-का-दबाव कहें तभी हम संपादन को अंगों के भीतर बसे समय-के-दाब के आधार पर बनी संयोजना मान सकते हैं।

सक्रिय दबाव, या जोर क़ायम रखने से भी भिन्न दृश्यों का प्रभाव संयुक्त होगा। किसी दृश्य में समय अपने होने का कैसे महसूस कराता है ? जब आपको पर्दे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पर घटनाओं के परे कुछ सार्थक, कुछ सत्यनिष्ठ भाव की प्रतीति हो; तब आपको बिल्कुल सचेत रूप से लगे कि फ़्रेम में जो दिख रहा है वह महज़ दृष्टव्य-चित्रण ही तक महदूद नहीं बल्कि फ्रेम ही के पार अनंत तक फैली किसी बात का सूचक है; जीवन ही का संकेतक है–तब उसका अहसास होगा। बिम्ब के अनंत की तरह, जैसा कि हमने पहले बताया, **कोई फ़िल्म-अगर वह सचमुच फ़िल्म हो तो-अपने स्वयं ही से बड़ी होती है।** उसमें उसके सर्जक के द्वारा सचेत रूप से भरे भावों और विचारों की अपेक्षा कुछ ज्यादा ही भाव और विचार अपने आप उभर आते हैं। प्रत्येक को अपने ही दृष्टिकोण से जिस जीवन के अर्थ लगाने और महसूस करने की अनुमति जीवन ही के द्वारा मिली हो उस निरंतर सचल और परिवर्तनशील जीवन ही के समान, एक सच्ची पिक्चर भी, फ़्रेम के किनारों के पार बहते समय को ईमानदारी से फ़िल्म पर दर्ज कर समय के भीतर ऐसे सजीव है जैसे उसके भीतर समय सजीव है; **यह दोधारी प्रक्रिया सिनेमा के लिए निर्णायक तत्व है।** तब फ़िल्म अपनी किसी अनावृत और संपादित कुण्डली (यानि, कहानी या कथानक) के किसी प्रकट रूप के पार कुछ चीज बन जाती है। प्रेक्षक के सामने जाते ही वह अपने सर्जक से अलग हो जाती है, अपनी स्वयं ही की ज़िंदगी जीने लगती है, रूप और अर्थ के परिवर्तनों से गुज़रती है।

मैं मोंताज़-सिनेमा के सिद्धान्तों को नकारूँगा क्योंकि वे फ़िल्म को पर्दे की सरहदों के पार सक्रिय नहीं रखते; फ़िल्म में प्रेक्षकों के सामने जो कुछ हो रहा हो उसके ऊपर अपनी निजी अनुभूतियों की संगति करने की अनुमति वे नहीं देते। 'मोंताज़-सिनेमा' प्रेक्षकों के सामने गुत्थियाँ और पहेलियाँ रखता है, उनसे प्रतीकों का मतलब निकलवाता है, दृष्टान्तों में रमता है, हर पल उनके बौद्धिक अनुभव के प्रति आग्रह बनाता है बहरहाल, इनमें से प्रत्येक पहेली का उसका अपना निश्चित, शब्दशः हल है; अतः आइजेंस्टाइन–सिद्धान्त दृश्यों पर स्वयं दर्शकों की ही प्रतिक्रिया के ज़रिये अनुभूतियों को प्रभावित होने देने से वंचित करता है। अक्टूबर में जब वे कैरेस्की के साथ बेलेलाइका (रूसी वाद्ययंत्र) को जक्स्टापोज़ करते हैं तब उनकी विधि उनका ध्येय बन जाती है बेलनी ने जैसा चाहा उसी अर्थ में। बिम्ब की रचना स्वयं में लक्ष्य बन जाती है और इस तरह दर्शकों पर घटनाओं के बाबत अपना ही पहलू थोपता हुआ फिल्मकार दर्शकों का दिमाग कुंठित कर देता है।

अगर सिनेमा की बैले या संगीत जैसी समय-आधारित कलाओं के साथ तुलना करें तब सिनेमा समय को दृष्टव्य, और वास्तविक रूप देती हुई कलाकृति मालूम देगी। फ़िल्म पर दर्ज़ होते ही, सारा फेनोमना–प्रदत्त और अपरिवर्तनीय–आपके सामने होगा, इस बात के बावजूद भी कि समय प्रगाढ़ रूप से आत्मपरक ०।

कलाकार इस तरह विभाजित हुए कि कुछ अपने स्वयं ही का आंतरिक संसार रचते हैं तो कुछ यथार्थ का पुनर्सृजन करते हैं। **बेशक, मैं पहले वर्ग में हूँ**–गो कि उससे कुछ फ़र्क नहीं पड़ता–मेरे आंतरिक संसार में कुछ लोगों की दिलचस्पी हो सकती है, और कुछ उससे मायूस हो सकते हैं, नाराज़ भी, मगर मुद्दे की बात यह कि सिनेमाई विधि के द्वारा सृजित आंतरिक संसार को सदैव यथार्थ ही के समान मानना

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

होगा क्योंकि रेकार्ड किये गये क्षण की अनंतरता में वह बाह्य वस्तु विषयक रूप में ही स्थापित हुआ।

संगीत की रचना के किसी अंश का कई तरीकों से गायन या वादन हो सकता है, उसकी समयावधि अलग-अलग हो सकती है। उसमें समय किसी प्रदत्त व्यवस्था में प्रस्तुत कपितय कार्य-कारणों की महज एक साधारण शर्त है; यानि उसका चरित्र अमूर्त है, दार्शनिक है। इसके विपरीत सिनेमा, भावनाओं को छूने वाले वाह्य और दृष्टव्य प्रतीकों में समय को दर्ज करने की योग्यता रखता है। अतः समय सिनेमा का मूलभूत आधार है; ठीक वैसे जैसे कि संगीत में ध्वनि, चित्र में रंग, नाटक में पात्र।

इसीलिए, लय, अंशों का परिमाणात्मक सिलसिला नहीं है; दरअसल, फ्रेमों के भीतर बसा समय-का-दाब ही उसे रचता है। **सो, मेरा पूरा विश्वास है कि सुसंपादन नहीं बल्कि लय सिनेमा का प्रमुख सृजनात्मक तत्व है।**

ज़ाहिर है कि संपादन हर एक कलारूप में मिलेगा, क्योंकि पदार्थ को सदैव चुनना और जोड़ना पड़ेगा। सिनेमा-संपादन की विशेषता यह है कि वह फ़िल्म के अंशों में 'छपे' समय को एकसाथ संयोजित करता है। संपादन में उन सभी छोटे-बड़े अंशों को तारतम्य में सँजोना होता है, जिनमें, प्रत्येक में, भिन्न समय प्रवाहित है। और उनकी संयोजना उस समय के अस्तित्व की उस नयी चेतना को रचती है जो अंतरालों के, याने प्रक्रिया के दौरान काटने-छाँटने के परिणामस्वरूप उभरती है; लेकिन, जैसा कि हमने शुरू ही में बता दिया कि संयोजना का विशिष्ट स्वभाव अंशों में पहले ही से मौजूद है। संपादन किसी नयी गुणवत्ता का पुनर्सृजन नहीं करता; वह संयोजित की जा रही फ्रेमों में ही अंतर्निहित है। फ़िल्मांकन (शूटिंग) के दौरान ही संपादन का पुर्वानुमान रहता है; जो कुछ फ़िल्मांकित हो रहा है उस बात के स्वभाव में, उसी के द्वारा आरंभ से ही आयोजित होकर, वह संपादन पूर्वानुमानित है। संपादन को कैमरे द्वारा दर्ज समय की अतिशयोक्ति और उनके अस्तित्व को तीव्रता की मात्रा के साथ जरूर कुछ करना होता है; लेकिन अमूर्त प्रतीकों, चित्रात्मक भौतिक-वास्तविक-सामग्रियों, दृश्य में गहरे विवेक और अत्यन्त सावधानी रख कर संयोजित की गयी संरचनाओं के साथ कुछ नहीं; दो एक-सी अवधारणाओं (जिनके बारे में कहा गया कि वे जुड़ कर कोई तीसरा अर्थ उत्पन्न करें) के साथ कुछ नहीं; लेकिन कल्पना में लायी गयी जीवन-की-विभिन्नताओं के साथ जरूर कुछ करना होता है।

स्वयं आइजेंस्ताइन ही की कृति मेरे दावे को सिद्ध करती है। अगर उनके अंतःकरण का दखल न होता, और अगर उन्होंने संपादित अंशों में किसी खास संयोजन के द्वारा आवश्यक समय-के-दाब को प्रयुक्त न किया होता, तब तो वह लय (जिसे उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से संपादन पर निर्भर माना) उनके सैद्धांतिक आधार ही की कमजोरी प्रकट कर देगी। मसलन, एलेक्ज़ेंडर नेवस्की में बर्फ़ पर हो रहे युद्ध को ही लें। समय-के-उपयुक्त-दबाव के ज़रिये फ्रेमों को भरे जाने की ज़रूरत टाल, छोटे–बल्कि कभी-कभी खूब छोटे–दृश्यों के द्वारा वे युद्ध की भीतरी ऊर्जा को हासिल करना चाहते हैं। बहरहाल, फ्रेमों को बदलती सनसनाती गति के बावजूद, दर्शक (कम-से-कम वे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दर्शक तो निश्चित ही कि जो खुले दिमाग़ सिनेमा देखने आये हो, जिनके दिमाग में यह न भर दिया गया हो कि यह तो 'क्लैसिकल' फ़िल्म है, और संपादन का 'क्लैसिकल' नमूना तो केवल सोवियत सिनेमा संस्थान ही में है) इस भावना से विचलित हुए कि पर्दे पर जो कुछ हो रहा है वह काहिल और अस्वाभाविक है। दरअसल कारण यह कि अलग-अलग फ़्रेमों में समय-सत्य बना हुआ नहीं है। अपने आप में वे रसहीन और गति शून्य है। इस तरह स्वयं फ़्रेम (जो विशिष्ट समय-प्रक्रिया से शून्य है और संपादन की जल्दी-से-जल्दी परिणाम हासिल कर लेने वाली शैली (जो स्वच्छंद और सतही है क्योंकि वह दृश्यों के भीतर समय के साथ कोई रिश्ता नहीं रखती) के बीच अपरिहार्य अंतर्विरोध है। अतः निर्देशक ने जिस सनसनी को उत्पन्न करना चाहा वह दर्शक तक नहीं पहुँची क्योंकि उसने पौराणिक युद्ध के प्रामाणिक समय-बोध से फ़्रेम को भरने की परवाह नहीं की। घटना पुनर्सृजित नहीं हुई बल्कि किसी पुराने तरीके से एक साथ पिरो दी गयी।

सिनेमा में लय, फ़्रेम के अंदर दृष्टव्य रूप से दर्ज़ पदार्थ की ज़िन्दगी से संप्रेषित होती है। सरकंडे की थरथरान से जिस तरह पता चल जाता है कि नदी में कैसा प्रवाह और कैसा दबाव है, उसी तरह दृश्य में पुनर्प्रस्तुत जीवन-प्रक्रिया के बहाव से हम समय की गतिविधि जान लेते हैं।

सर्वोपरि समय के बोध के, यानि लय के द्वारा निर्देशक अपनी वैयक्तिकता प्रकट करता है। लय शैलीगत निशानों से कृति में रंग भरती है। वह सोची-विचारी नहीं होती, और किसी स्वच्छंद सैद्धांतिक आधार पर रची नहीं होती, बल्कि जीवन के बाबत निर्देशक की अंतर्निष्ठ चेतना के और समय के बाबत उसकी अपनी 'तलाश' की प्रतिक्रिया की वजह से किसी फिल्म में स्वतःस्फूर्त अस्तित्ववान होती है। मुझे लगता है कि किसी दृश्य की लय महसूस करना कदाचित साहित्य में किसी ईमानदार सच्चे शब्द को महसूस करने समान ही है। लेखन में किसी अनुपयुक्त शब्द समान फिल्म में अनुपयुक्त लय भी कृति के सत्य का नाश करती है। (निःसन्देह लय की अवधारणा गद्य पर भी प्रयुक्त हो सकती है—हालाँकि बिल्कुल दूसरे तरीके से।)

लेकिन यहाँ एक अपरिहार्य समस्या आ खड़ी होती है। यूँ कहें कि मुझे फ़्रेम के भीतर स्वाभाविक और स्वतंत्रता के साथ बहता समय चाहिए, ताकि दर्शक ऐसा जरा महसूस न करे जैसे उसके अवबोधन (परसेप्शन) पर जोर जबर्दस्ती की जा रही हो, और वह फ़िल्म के पदार्थ को आत्मसात कर और मन की ओर किसी नये एवं अंतरंग अनुभव की तरह खींच कर, अपने स्वयं के पदार्थ की तरह पहचानते हुए, एक ही, कलाकार के द्वारा स्वयं को बंदी बना लिया जाने दे। लेकिन फिर भी, एक प्रकट द्वंद बच रहता है क्योंकि निर्देशक का समय-बोध दर्शक पर किसी-न-किसी तरह का जोर-जबर्दस्ती वाला होता ही है, क्योंकि वह अपने भीतर संसार को लेकर आग्रही होता है। दर्शक या तो आपकी लय (आपके संसार) में लीन हो आपका सहयोगी बनता है, या फिर नहीं होता है (यानि इस स्थिति में कोई संबंध स्थापित नहीं हुआ।) अतः कुछ लोग आपके अपने बनते हैं, और शेष अजनबी रह जाते हैं. सो मेरे ख़याल से, यह

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

न केवल एकदम स्वाभाविक, बल्कि, खेद के साथ कहूँ कि, अपरिहार्य है।

अतः इसे मैं अपने काम-का-उद्यम (प्रोफेशनल टास्क) मान, समय के मेरे स्वयं-ही के विशिष्ट प्रवाह का सृजन कर, दृश्य में, काहिल और निद्राजनक गतिविधि को हटा, तूफ़ानी और तेज़तर्रार हलचल का भाव संप्रेषित करता हूँ--जिसे एक व्यक्ति एक तरह से तो दूसरा भिन्न तरह से देख सकता है। संयोजना और संपादन समय के प्रवाह में व्यवधान पहुँचाते हैं, उनका क्रमभंग करते हैं और उसी क्षण कुछ नया भी देते हैं। समय का विरूपण उसे लयात्मक अभिव्यक्ति देने वाला उपाय भी हो सकता है।

समय-उत्कीर्णन !

लेकिन विषम समय-दाब के जबरन जोड़े गये दृश्यों को यूँ ही प्रवेश नहीं देना चाहिए; उसे किसी भीतरी जरूरत में से, यानि समग्र पदार्थ में चलती हुई किसी ऐन्द्रिक प्रक्रिया में से उभरना होता है। जिस क्षण संक्रमणों की ऐन्द्रिक प्रक्रिया को व्यवधान पहुँचे उसी क्षण संपादन का आग्रह दखल देना शुरू कर देता है (जिसे निर्देशक छिपाता है); वह अनावृत हो जाता है, आँखों की ओर झपटती है। अगर समय किसी आत्मिक विकास के आग्रह की प्रतिक्रिया में धीमा या तेज किया जाने की बनिस्बत कृत्रिम रूप से धीमा या तेज किया जाये, यानि लय का परिवर्तन गलत हो तो परिणाम झूठा और कर्कश होगा।

असमान समय-मूल्य के अंशों का जुड़ना अनिवार्यतः लय तोड़ देता है। बहरहाल, अगर यह टूटन संयोजित फ्रेमों के भीतर मौजूद सक्रिय ताकतों द्वारा प्रोत्साहित हो, तब तो वह सही लयात्मक रूपरेखा को तराशने के लिए सारभूत तत्व हो सकता है। मसलन, कुछेक समय-दाब जिन्हें रूपक के स्तर पर कुंद, नदी, बाढ़, झरना, समुद्र नाम दें--उन्हें एक साथ जोड़ उत्पन्न हुआ अनोखा रूपाकार सर्जक का ही समय-बोध है, जो नये सिरे से रूपाकृत पदार्थ की तरह अस्तित्व में आता है। जहाँ तक समय-बोध जीवन के बाबत निर्देशक के अंर्तनिष्ठ अंतर्बोध के संगत हो, और संपादन फिल्म के अंशों में लयात्मक दबावों से तय हो वहाँ तक उसके हस्ताक्षर उसके संपादन में नजर आ सकते हैं। वह फिल्म की अवधारणा के प्रति उसके रुख़ की अभिव्यक्ति, और उसके जीवन-दर्शन की चरम रूपाकृति है। मेरे ख्याल से अपनी फिल्म को सरलता से और भिन्न-भिन्न तरीक़ों से संपादन करने वाला फ़िल्मकार निश्चय ही छिछला होगा। जबकि हम बर्गमैन, ब्रेसों, कुरोसावा या अंतोनिओनी के संपादन को सदैव पहचान लेंगे; उनमें से किसी एक का किसी दूसरे के साथ कभी भी घाल-मेल नहीं किया जा सकता क्योंकि अपनी फ़िल्मों की लय में अभिव्यक्त प्रत्येक का समय-बोध हमेशा एक-समान होगा।

बेशक, अपने व्यवसाय (प्रोफ़ेशन) के अन्य सभी नियमों की तरह आपको संपादन के नियम ज्ञात होने ही चाहिए; लेकिन कलात्मक-सृजन उसी बिन्दु से आरंभ होता है जहाँ ये नियम झुकाये या तोड़े जाएँ। लेव टाल्स्टॉय निसन्देहं बूनिन के समान दोषरहित शैलीकार (स्टायलिस्ट) नहीं थे, और उनके उपन्यासों में लालित्य और परिपूर्णता के उन लक्षणों का अभाव था जो बूनिन की कहानियों में पाये जाते हैं, लेकिन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बूनिन को टालस्टाय से बड़ा लेखक नहीं माना जाता। टालस्टाय को उनके भारी भरकम, प्रायः अनावश्यक-नीतिशास्त्रीय, और बेडौल वाक्यों के लिए क्षमा नहीं किया जा सकता, लेकिन आप उन्हीं को मनुष्य के किसी रूप या लक्षण की तरह मान पसंद करने लगते हैं। जब किसी महान व्यक्ति का सामना होता है, आप उसे उसकी तमाम 'कमजोरियों' के साथ स्वीकार कर लेते हैं, वे उनकी सौंदर्यात्मकता के विशिष्ट लक्षण बन जाते है।

जब आप दोस्तावस्की की कृति के बरक्स उनके चरित्र-चित्रण को निचोड़े तो वे आपको व्यग्र करते हैं : जैसे, 'सुंदर', 'चमकीले', 'पीले चेहरे' आदि। लेकिन इस बात से दरअसल कुछ फ़र्क नहीं पड़ता क्योंकि आप किसी आम लेखक (प्रोफेशनल) की या शिल्पकार की बात नहीं कर रहे बल्कि किसी कलाकार और चिंतक के विषय में विचार कर रहे होते हैं। टालस्टॉय को असीम आदर करने वाले बुनिन की नज़रों में अन्ना केरेनिना खराब ढंग से लिखी पुस्तक थी, और, जैसा सर्वज्ञात है, उन्होंने उसे फिर से लिखने की कोशिश की--लेकिन पूरी तरह असफल रहे। कलाकृतियाँ, अपने तईं, ऐन्द्रिक प्रक्रिया से रची होती है, अच्छी या बुरी हों पर वे 'रक्त-संचार' की अपनी ही प्रणाली का सृजन हैं जिसे जरा-भी अस्तव्यस्त करना अनुचित है। संपादन के लिए भी यही बात उचित है : यह हुनरमंद व्यक्ति की तरह तकनीकी-कौशल में दक्षता हासिल करने का नहीं, बल्कि अपने स्वयं की विशिष्ट वैयक्तिक अभिव्यक्ति की ओजस्वी ज़रूरत का सवाल है। सर्वोपरि यह बखूबी जान लो कला की किसी अन्य विधा की बनिस्बत आपने सिनेमा ही को क्यों चुना, और आप इसके सौंदर्यशास्त्र के द्वारा क्या कहना चाहते हैं। प्रसंगवश, हाल के वर्षों में, रूस में, या जहाँ खूब मुनाफा होता हो उस पश्चिम में, सिनेमा-संस्थानों में बहुत बड़ी संख्या में युवा लोगों का प्रवेश 'जैसी मर्जी वैसा करने' की इजाजत के साथ हुआ है। यह भयानक है। तकनीक की समस्याएँ तो बच्चों का खेल है; जितना चाहो सीख लो। लेकिन स्वतंत्र-रूप से और पूरी योग्यता के साथ सोचना 'कुछ करना' सीखने, या अपना व्यक्तित्व बना लेने जैसी कोई बात नहीं है। किसी के लिए बाध्यता नहीं कि वह ऐसा भार उठाये जो न सिर्फ मुश्किल बल्कि कभी-कभी बर्दाश्त ही के बाहर है; लेकिन इसके सिवा कोई चारा नहीं, उसे या तो समूचा होना है या कुछ नहीं। वह आदमी जिसने इसलिए चोरी की कि दोबारा कभी नहीं करेगा सदा के लिए चोर हो ही गया। जिसने कभी भी सिद्धांतों के साथ दगाबाजी की हो वह जीवन के साथ पवित्र संबंध कायम नहीं कर सकता। अतः यदि फ़िल्मकार कहे वह जीविकोपार्जनार्थ कृति का निर्माण करेगा ताकि अपने स्वप्न साकार करती फ़िल्म रचने के लिए ताक़त और साधन जुटा ले--तो यह बहुत बड़ा धोखा ही नहीं, आत्म-छलना है। वह फिर कभी अपनी फ़िल्म नहीं बना पायेगा।

●●●

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कृति मूल्यांकन

◆ डॉ० रश्मिरेखा

खाली जगह की आकाश गंगा

हिन्दी कविता में पिछले तीन दशक विचार धारा के वर्चस्व के उल्लास उसके विघटन की उदासी और फिर से हिम्मत और ताकत जुटाकर सक्रिय होने के दौर की गवाही देते हैं। इसमें राजेश जोशी शुरू से ही एक खास तरह की कशिश के कारण अपनी अर्थ सघन और आसपास के समय पर घटित होने वाली कविताओं के लिए अलग से पहचाने जाते रहे हैं। उनके पिछले संग्रहों **'समर गाथा', 'एक दिन बोलेंगे पेड़', 'मिट्टी का चेहरा'** और **'नेपथ्य में हँसी'** को ध्यान में रखे तो एक विचार धारा सम्पन्न बौद्धिकता और सहृदयता उनमें शुरु से ही दिखाई पड़ती है। राजेश जोशी कविता में विचार धारा की मौजूदगी को लेकर लगातार सजग रहे हैं। कहीं उनमें सर्वहारा संस्कृति को समृद्ध करने की कोशिश दिखाई पड़ सकती है तो दूसरी जगह वे मध्यवर्गीय अंतर्विरोधों के आलोचक के रूप में मिल सकते हैं। उनकी कविताओं में विवरण या सूचनाएँ मात्र जानकारी के लिए नहीं आती है। इससे भाषा में वे एक तनाव पैदा करते हैं। अर्थ की लय निकालने के लिए। दूसरे शब्दों में विवरण का इस्तेमाल कंट्रास्ट के लिए करते है ताकि बातों के मतलब साफ-साफ नजर आयें। इनकी कविताओं की खासियत अंतर्वस्तु में निहित वह संवेदना है जो देर तक पाठकों को स्तब्ध, उदास और सोच की मुद्रा में रखती है। और जिनके पास उसकी संरचना आसानी से अपने सीधे-साधे रास्ते से ले जाती है। ज्ञानेन्द्रपति जहाँ अपनी कविताओं में कृत्रिम शब्दों की चमक से अर्थ को नई उड़ान देते हैं, वहाँ राजेश जोशी विवरण और घटनाओं के बीच सादगी से कही गई अपनी बात द्वारा। इसीलिए समकालीन कविता में जहाँ ज्ञानेन्द्रपति ने सिर्फ भाषा अर्जित की है, वहाँ राजेश जोशी ने आम फहम भाषा में अपनी बात कहने का अपूर्व अंदाज। उर्दू में शेर जैसे लिखा नहीं जाता, कहा जाता है। उसी तरह राजेश जोशी की कविताएँ बहुत कुछ कहती है, जरुरी नहीं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सबकुछ लिखा ही जाय। मसलन इनकी एक कविता है **बर्बर सिर्फ बर्बर थे**–में कवि ने बाबरी मस्जिद या उससे जुड़ी किसी घटना का जिक्र नहीं किया है। सिर्फ बताया है पहले बर्बर सिर्फ बर्बर हुआ करते थे। उनके पास अपनी बर्बरता के लिए न कोई तर्क था/न कोई धर्म की ध्वजा थीं/न भाषा का छल था/ न दुःख और पश्चात्ताप जैसे शब्द थे/ अंत में कवि कहता है "हम उन्हें कई युग पीछे छोड़ आए- केवल यह एक छोटी सी पंक्ति पूरी कविता को कई-कई अर्थों, संदर्भों से भर देती है। मानो किसी ने खामोश तालाब में ढ़ेला फेंक दिया हो। बाबरी मस्जिद के ध्वंस का इतिहास, लहूलुहान समय, लोगों का चरित्र सबकुछ--सारे सवालात के साथ सामने आ जाता है। मितकथन का बहुत अच्छा उदाहरण है यह कविता।

दो पंक्तियों के बीच राजेश जोशी की चौथी ताजा कविता है, जो 2000 में प्रकाशित हुई है। इस किताब में छोटी-बड़ी चौवन कविताएँ है जो 92 से 99 के बीच लिखी गई हैं। यह समय राजनीतिक दृष्टि से जहाँ देश में अस्थिर सरकार, साम्प्रदायिकता के उभार और राजनीति में अपराध की हौसलाअफजाई का है। वहीं विदेशों में समाजवादी ताकतों के टूटने और कमजोर होने का तथा भूमंडलीकरण के नाम पर पूरे विश्व को अमरीकी संस्कृति में रंग देने का है। तो सामाजिक दृष्टि से पुराने मूल्यों के जड़ों में टूटने, अपसंकृति के फैलाव एवं संचार क्रांति के माध्यम से दिग्भ्रमित होने का है। साहित्यक दृष्टि से भी यह एक संक्रमण काल है। एक ओर जड़ों की ओर लौटने और बचाने की चिंता है, तो दूसरी ओर सभी चीजों के अंत की घोषणा। इस कविता पुस्तक में कवि का पूरा समय, उसकी चिंताएँ–कवि के बारीक अवलोकन के साथ दर्ज है। इनकी कविताएँ पाठकों को आगाह उतना नहीं करती, जितनी बेचैन--शायद यही कविता की सफलता भी है।

राजेश जोशी की कविताओं की एक बड़ी खासियत उसमें अर्थ के लय का होना है, बहुत कुछ वैसा लय जैसा मीर और फिराक के मिसरों में है। कविता और लय के रिश्ते के बारे में कवि की राय है कि "गद्यात्मकता में भी एक आंतरिक लय होनी चाहिए होती भी है लेकिन जब आंतरिक लय की सलिला सूखने लगती है, तब दिक्कत खड़ी होती है। ऐसी दिक्कत इधर की बहुत सारी कविताओं की है।" इस नजर से भी राजेश जोशी की कविताएँ सम्पन्न कविताएँ है। इस संग्रह की पहली कविता इस पुस्तक की शीर्षक कविता है। इसकी शुरू की पंक्तियाँ है–

कविता की दो पंक्तियों के बीच मैं वह जगह हूँ/ जो सूनी-सूनी सी दिखती है हमेशा/ यहीं कवि की अदृश्य परछाई घूमती रहती है अकसर/ मैं कवि के ब्रह्माड की एक गुप्त आकाश गंगा हूँ।

जो चीजें सामने दिखती हैं, कवि की नजर उस पर नहीं, उनके बीच की खाली जगह पर जाती है। फिर देखते ही देखते वह उस खालीपन को अनेक अर्थों संदर्भों और अभिप्रायों से भर देता हैं। यहाँ गौरतलब है कि कवि की नजर जितनी पैनी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

होगी, कविता में अर्थ की उतनी तराश होगी। पाठकों को जो अपेक्षा कवि से होती है, कुछ वैसी ही अपेक्षा कवि को भी पाठकों से होती है। जो दो पंक्तियों के बीच की सूनी-सूनी जगहों में जहाँ अनुस्वार और कुछ मात्राएँ झाँकती रहती है या शब्दों से छन-छन कर गिरती कई ध्वनियों में उन अर्थों की तालश कर सके। कविता के अंत में कवि कहते हैं–

यहाँ आने से पहले अपने जूते बाहर उतार कर आना क्योंकि एक जरा सी बाहरी आवाज नष्ट कर देंगी/ मेरे पूरे जादुई तिलिस्म को।

एक कविता है **नींद में चलने वाला आदमी'** जिसे अपनी नींद में चलने वाली आदत के बारे में पता नहीं होता। तभी तो सचमुच की सड़क पर भी वह सपने की किसी सड़क की तरह ही चलता है–अपने अधूरे सपनो को ढूँढता। कोई नहीं जानता किस दिशा की ओर वह चल देगा, किस दरवाजे की कुंडी खटखटायेगा, पता नहीं किस लोककथा के कौन से पात्र से उसकी मुलाकात होगी। आसपास के सारे दृश्यों से बेखबर उस आदमी के कंधों पर बाज की तरह बैठा है बादल और माथा चाँद के करीब। कोई नहीं जानता, उसकी बेचैन आत्मा उसे कहाँ-कहाँ भटकायेगी। इस समय आधी रात ढल चुकी है और वो सड़क पर है। यह व्यक्ति और कोई नहीं खुद कवि है–

कही वह हम ही तो नहीं है/नींद में चलते हुए

एक कविता किस तरह कवि से संभव होती है। कवि किस तरह उसमें डूबता-उतरता है। उस सारी रचना प्रक्रिया की भीतरी दुनिया की महीन व्याख्या है यह कविता। नींद पर एक और कविता है–**छोटी नींद और सपने'** कभी-कभी ऐसा भी होत्ता है कि सपने आने को होते हैं और बीच में नींद खुल जाती है। संभव है, ये सपने किसी और की आँखों में चले गए हों और वे फिर से लौट कर आएँ। ये दोनों ही स्थितियाँ ठीक है। पर कवि की मुख्य चिंता यह है कि वे सपने मर तो नहीं गए। यह नहीं होना चाहिए। क्योंकि किसी भी समाज को बेहत्तर भविष्य सपनों की नीव पर ही होता है।

राजेश जोशी की कविताओं की एक खास बात है कि उसके अर्थ मे भी कविता होती है। इस तरह एक कविता एक साथ कई-कई कविताएँ रचती है। मसलन इनकी एक कविता है–**'पानी की आवाज'** इसे पढ़ते हुए अरुण कमल की नए इलाके की 'जैसे' कविता याद आती है। पर वहाँ कई तरह की आवाजें न सुन पाने की बात है तो यहाँ सिर्फ पानी की तरह-तरह की आवाजें सुन पाने की बात। जिसे कवि ने अलग तरह के बिम्बों द्वारा बहुत बारीक अभिव्यक्ति दी है--

उसके गिरने में उसके उछलने की आवाज शामिल थी/ उसकी कई आवाजों में एक आवाज/ उसके छत से टपकने की भी थी/ टपकने की जगह पर जब कोई बरतन रख दिया जाता था/ तो उसमें छन्न.... की एक आवाज और जुड़ जाती थी।

मार्क्सवादी दर्शन ने कवि को चीजों को देखने का एक खास नजरिया तो

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दिया है, साथ ही संवेदनाओं को तरल भी किया है। **आज की कविताओं में जब संवेदना खोज की वस्तु होती जा रही है, राजेश जोशी की कविताएँ कविता के भविष्य के प्रति आश्वस्त करती हैं।** यह दुनिया शेषनाग के फण पर नहीं, इन मेहनतकशों की मिहनत पर टिकी है। इस पूंजीवादी दुनिया का पूरा अभिजात्य और सौन्दर्य इन्हीं के दम पर है। पर हम देखते हैं जब भी कोई घटना या विवरण दिया जाता है तो उसमें कुछ नाम होते हैं ओहदों के साथ बाकी सब इत्यादि होते हैं। खास लोगों के भाषण सुनने, गोष्ठी में उपस्थिति बढ़ाने, जुलूस में तख्तियाँ उठाने, नारे लगाने, लंबी लाइन में लगकर मतदान करने इत्यादि ही आते हैं--कभी-कभी दुर्घटना में हुई मृत्यु में भी ये इत्यादि ही रह जाते हैं। इस अंक में प्रकाशित **'इत्यादि'** कविता की आगे की पंक्तियों में कवि कितना सही कहता है–

इत्यादि ही करने को वो सारे काम करते थे/ निससे देश और दुनिया चलती थी/ हॉलाकि उन्हें ऐसा लगता था कि वे ये सारे काम/ सिर्फ अपना परिवार चलाने को करते थे/

इसी तरह की एक कविता हैं **'सहायक क्रियाएं'** (इस अंक में शामिल) जिसमें कवि ने भाषा व्याकरण के एकदम नए बिम्ब द्वारा मेहनतकश वर्ग के चरित्र और क्षमता की बहुत अच्छी और सटीक व्याख्या की है। भाषा में सहायक क्रियाएँ अक्सर शब्दों की पाँत में इस तरह अंत में आकर बैठती है–''जैसे वह गरीब पहुना हो। जो सिकुड़ कर बैठा हो पंगत के आखरी कोने पर। प्रगीत अर्थात नफासत से भरे लोग अक्सर इन सहायक क्रियायों को अपनी रचना-भाषा से धकियाने की कोशिश करते है। पर 'जीवन के व्यापक गद्य में उनकी उपस्थिति बनी रही है लगातार। वह अगर आगे आ जाय तो पूरे वाक्य को प्रश्नात्मक मुद्रा मे बदल देती है और कभी जिद पर अड़ जाए तो 'गड़बड़ा सकती है पूरे वाक्य को अकेले।'

खोई हुई चीजों में कवि कहता है कि भूत अर्थात् अतीत हमारी स्मृतियों में हमेशा पुरानी खराब घड़ियों में रुके समय की तरह ठहरा रहता है--उससे मिलना–एक लंबी याद में डूब जाना है। **रुको बच्चों** कविता में कवि बताता है–ऑफिसर, न्यायाधीश, पुलिस ऑफिसर या मंत्री की गाड़ी हो, बच्चों तुम रुको इन्हें पार करने दो, इन्हें जल्दी जाना है। क्योंकि इन्हें कहीं नहीं पहुँचना है। तेज चलना इनकी जरूरत नहीं आभिजात्य का हिस्सा है। **चप्पलें** कविता में चप्पलें देवीलाल पाटीदर की ड्राइंग कॉपी में काजल और चारकोल से बनी चप्पलें हैं–जिनके बारे में कवि कहता है कि 'कोई झूठ इन्हें पहन नहीं सकता कि उनके पाँव नहीं।' और सच उन्हें पहनेगा नहीं कि ये चप्पलें नहीं। **'जबतक अपील लिखता हूँ'** कविता में कवि बताता है कि अपील लिखने में संवेदनशील होने में भी कुछ समय लगता है पर अपराध के लिए तो इतना भी समय नहीं चाहिए। यही वजह है कि जबतक अपील लिखी जाती है तबतक इस तरह के कई हादसे समाज में किए जा चुके होते हैं। **तो हमारे शहर की गलियाँ** कविता में बताया गया

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है कि बेरोजगारी के दिनों मे ये गलियाँ हीं सहारा देती है। तब इन्हीं गलियों से रात को भटकता दिखता चाँद कितना अपना लगता है। बाद की पंक्तियों में कवि कहता है–

सड़कों के नाम अक्सर बेगमों और नवाबों के नाम पर थे/जबकि गलियों के नाम जिन लोगों के नाम पर थे/ उनका कोई लिखित इतिहास नहीं था/ काली धोबन की गली, शेखबत्ती की गली/

यह कविता हमें देर तक रोकती है। कविता की पैनी नजर से सड़कों और गलियों के बीच के फासले से रु-ब-रु कराती हुई। **'हमारी भाषा'** कविता में कवि संकेत देता है कि हमारी भाषा में जितनी बड़ी दुनियाँ है, उससे कम बड़ी दुनियाँ भाषा के बाहर नहीं है। हम भाषा के माध्यम से जितना जान पाते हैं, उतना ही हम अपनी भाषा के कारण नहीं जान पाते हैं।

अहद होटल अपने पाकिस्तानी लेंखक दोस्त अजमल कमाल से बातचीत की संरचना में लिखी एक अच्छी कविता है। इसमें अपने होने और बनने से जुड़ी चीजों को बड़ी आत्मीयता से याद किया गया है, उसके खत्म होते, जाने की गहरी कसक के साथ। इस होटल में घंटों बैठे रहने पर गपियाने पर कोई रोक नहीं थी। इसकी बड़ी वजह थी कि शहर के सबसे फक्कड़ शायर जनाब ताज भोपाली इस होटल के मैनेजर होते थे उन दिनों। अपसंस्कृति में फैलते व्यावसायिकरण जिसका शिकार यह होटल भी आगे चलकर हो जाता है, का बारीक विश्लेषण इसमें हुआ है। एक उदास कर देने वाली संवेदना पूरी कविता में शुरू से आखिर तक बहती है।

कवि को हर वह स्थिति दुःख देती है जो हर उस चीज को खत्म करने में धुन की तरह लगी हुई है–जहाँ उसके आत्मीय सम्बन्ध जुड़े हैं। आज चाहे वे कितने भी अटपटे क्यों न लगे। यह अतीत के प्रति मोह से अधिक भविष्य के प्रति मोह है। जो बार-बार कवि को अतीत या अप्रासंगिक होती जा रही चीजों की ओर ले जाती है। **'संयुक्त परिवार'** कविता में कवि को यह बात कसकती है कि ऐसा पहले कभी नहीं हुआ कि मेरे आने के पहले ही कोई लौट गया हो ताले में अपनी पर्ची खोंसकर। कवि बहुत देर तक उदास और चिंतन में डूबा रहता है। कोई यह नहीं सोचता कि इस टूटने की प्रक्रिया में सचमुच क्या टूट रहा है, मनुष्यता क्यों खत्म होती जा रही है। आज की सभ्यता में सारे आत्मीय सम्बन्ध ताक पर रख दिए गये हैं, आदमी अपने में सिमट कर रह गया है। अब तो इस संचार युग में बधाई और शोक संदेश भी तार-टेलीफोन से ही आ जाते है। ऐसे में –

अब तो सिर्फ एलबम में ही रहते हैं परिवार के सारे लोग एक साथ।

इस कविता पुस्तक में दाम्पत्य प्रेम की कुछ बहुत अपनी सी लगती कविताएँ भी हैं। **पीठ की खुजली** एक ऐसी ही कविता है–जिसमें कवि को अपनी पीठ की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

खुजली के कारण याद आ रही है पत्नी की हथेली। तब कवि कहता है—याद न भी क्या कारण खोजा है आने का/ घर से इतनी दूर इस गुलाबी शहर में।

इस तरह गहरी संवेदना और रागात्मकता लिए **'उसका चेहरा'** एक छोटी सी प्रेम कविता है। कविता में फोटोग्राफी की तकनीक के साथ—मानो सिनेमा का कोई रोमांटिक दृश्य हो। यह कविता पाठक को कई बार अपने पास पढ़ने के लिए बुलाती है—हर बार अर्थ की कुछ नई चमक और दृश्य के साथ। पूरी कविता इस तरह है—

अचानक गुल हो गई बत्ती/ घुप्प अंधेरा हो गया चारो तरफ/ उसने टटोल कर ढूँढ़ी दिया सलाई/ और एक मोमबत्ती जलाई/ आधे अंधेरे और आधे उजाले के बीच/ उभरा उसका चेहरा/ न जाने कितने दिनों बाद देखा मैंने/ इस तरह उसका चेहरा/ जैसे किसी और ग्रह से देखा मैंने/ पृथ्वी को।

इन कविताओं से गुजरते हुए अंत में एक कथात्मक संरचना के ताने बाने से बनी लगभग आठ पृष्ठों की लंबी कविता **'क्यों रोई वह इतने बरस बाद'** से मुलाकात होती है। खत्म होते सामंतवाद के अवशेषों के वर्णन के साथ कविता के अंत में हम पाते हैं कि रिश्तों का टूटना दुःखदायी होता है, चाहे वह रिश्ता नफरत का ही क्यों न हो। यह कविता संग्रह की अन्य कविताओं की तुलना में कम ताकत समेटे हैं। आठ पृष्ठों की यह लंबी कविता उतनी बातें नहीं कह पाती, जितनी इस संग्रह की अपेक्षाकृत छोटी कविताएँ कह जाती हैं।

सारांश में हम कह सकते हैं कि राजेश जोशी की कविता में नाट्य तत्त्वों की प्रचुरता है। उनका कवि एक साथ ही कथाकार, नाटककार, आलोचक और चिंतक की भंगिमाओं और उसकी भीतरी चेतना को समेटे हुए है।

दो पंक्तियों के बीच/ राजेश जोशी/ प्रथम संस्करण 2000 /मूल्य 125 रुपए/राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

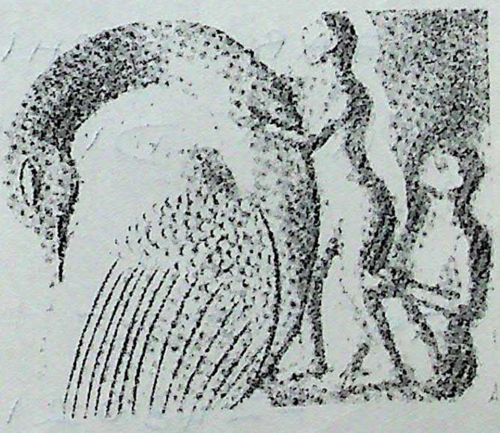

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

W

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ADRIAN LAGNADO

C.E.O.
SPORT EXPEDITIONS
(FILM UNIT)
6. MENDIP ROAD.
WINDMILL HILL
BRISTOL BS3 4NY
U.K. Tel; 0044 117 9231
083.

INDIA

VILLAGE DARA
P.O FOJAL
NEAR. DOBHI
KULU DISTRICT
H.P.

Tel 01902-
-243021

DELHI mobile: ~~9891184775.~~

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

9891184765